पुस्तक ● अमिट रेखाएं

लेखक ● देवेन्द्र मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न'

प्रकाशक ● श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा जि० उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण ● अगस्त १९७३

मुद्रण ● संजय साहित्य संगम के लिए

द्वारा ● रामनारायन मेडतवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग, प्रेस
राजामण्डी, आगरा–२

मूल्य · दो रुपए मात्र

समर्पण

जिन्होने

मुझे बाल्यकाल मे अपनी प्यारी गोद में बिठाकर

ऐतिहासिक और धार्मिक कहानिया सुनाई,

और मन मे वैराग्य की भावना उद्‌बुद्ध की

उन्ही वात्सल्यमूर्ति

मातेश्वरी महासती श्री प्रभावती जी म० के

कर कमलों में

—देवेन्द्र मुनि

लेखक की कलम से

कहानी साहित्य संसार का सर्वश्रेष्ठ सरस साहित्य है। साहित्य की जितनी भी विधाए है उसमे कथा साहित्य ही सब से अधिक मधुर है। युग के प्रारंभ से लेकर वर्तमान युग तक मानव कहानी के माध्यय से अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता रहा है। वेद, उपनिषद, आगम और त्रिपिटक तथा पुराण और साहित्यिक ग्रन्थो में व लोक-जीवन मे हजारो लाखो कहानिया प्रचलित है जो इस सत्य तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है कि मानव आदि काल से ही कहानी से कितना प्रेम करता रहा है और कितने चाव से सुनता रहा है। इसी बात का समर्थन पाश्चात्य विचारक रिचर्डबर्टन ने इस प्रकार किया है—कहानी संसार की सबसे पुरानी वस्तु है, इसलिए आश्चर्य नही कि इसका प्रारंभ उसी समय हुआ हो, जब मानव ने चलना सीखा था।

कहानी साहित्य को विश्व के मूर्धन्य-मनीषियो ने भाषा-परिभाषा के बंधन मे आबद्ध करना चाहा है। विभिन्न-विचारको ने विभिन्न परिभाषाए लिखी है।

अंगरेजी कथा साहित्य के आद्य-निर्माता 'एडगर एलन पो' का मन्तव्य है कि पाठको की भावना तथा बुद्धि को

स्पर्श करना लेखक के लिए आवश्यक है पर प्रवाह की एकता का निर्वाह तो उसके लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है, वह घटनाओ का तारतम्य उपस्थित करे, वह चरित्र निर्माण का ऐसा आदर्श ग्रहण करे, जो अभिष्ट प्राप्ति मे सहायक हो, पर उसमे भरती का एक शब्द भी नही होना चाहिए।'

जैक लण्डन का मत है—'कहानी मूर्त सम्बद्ध, त्वरा गुणमयी, सजीव और रुचि कर होनी चाहिए।'

जे० वी० ईसनबीन ने लिखा है 'प्रभाव की एकता, कथानक की श्रेष्ठता, घटना की प्रधानता पात्र और किसी एक समस्या का समाधान कहानी मे ये पाँच गुण होने चाहिए।'

शैली की दृष्टि से कहानियो का विभाजन इस प्रकार हो सकता है।

१ वर्णनात्मक

२ कथोपकथन-प्रधान

३ आत्म-कथन-प्रधान

४ डायरी-प्रधान

५ पत्र-प्रधान

प्रस्तुत पुस्तक मे जो कहानियां है वे वर्णनात्मक और कथोपकथन की मिश्रित शैली मे लिखी गई है।

विषय की दृष्टि से आज तक जो कहानी साहित्य लिखा गया है उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१ प्रेम कहानिया

२ ऐतिहासिक-कहानियां

३ जासूसी-कहानियां

४ जीवन-हास्य पर प्रकाश डालनेवाली आश्चर्य-कहानियां

५ व्यंग तथा हास्य कहानियां

६ आदर्श कहानियां

७ मनोवैज्ञानिक-कहानिया

विपय की दृष्टि से प्रस्तुत-पुस्तक मे ऐतिहासिक, और आदर्श कहानिया जा रही है। ये कहानियाँ कुछ तो जून १९७३ मे लिखी है और कुछ कहानियाँ १९६३ में। इस प्रकार कुछ नई और कुछ पुरानी कहानियो का इसमें सुमेल हो गया है।

परम श्रद्धेय राजस्थान केसरी पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म० की अपार कृपा दृष्टि से ही मै प्रगति के पवित्र पथ पर बढ रहा हूँ, अतः किन शब्दो में उनका आभार व्यक्त करू यह मुझे सूझ नही रहा है। साथ ही 'सरस' जी के मधुर स्नेह को भी भूल नही, सकता, जिन्होंने पुस्तक को मुद्रण कला की दृष्टि से सुन्दर ही नही अति सुन्दर बनाई है।

स्थानकवासी जैन पडाल
लाखन कोटडी अजमेर
१ अगस्त १९७३

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशकीय

अपने प्रेमी पाठको के कर कमलो मे 'अमिट रेखाएं' पुस्तक थमाते हुए मन आनन्द के सागर मे उछाले मार रहा है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक है राजस्थान केसरी प्रसिद्धवक्ता पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म० के सुशिष्य देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री। देवेन्द्र मुनि जी प्रतिभासम्पन्न लेखक है, उन्होने विविध-विधाओ मे चालीस से भी अधिक पुस्तके लिखी है, जिसका साहित्यिक संसार में अच्छा सम्मान हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक मे उनके द्वारा लिखी हुई ऐतिहासिक व आदर्श कहानिया है। ये कहानियां मन को प्रेरणा देती है और चिन्तन को उद्बुद्ध करती है।

भगवान महावीर की पच्चीस सौ वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे लिखी हुई 'महावीर युग की प्रतिनिधि कहानियाँ' पुस्तक भी हम शीघ्र ही पाठको को समर्पित करना चाहते है। साथ ही मुनि श्री का महावीर जीवन पर शोध-प्रबन्ध भी शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे है।

अन्त मे हम उन सभी उदारमना दानी महानुभावो का हृदय से आभार मानते है जिन्होने उदार अर्थ सहयोग देकर प्रकाशन शीघ्र करने के लिए हमे उत्प्रेरित किया है। भविष्य मे भी उनसे अधिक सहयोग की अपेक्षा रखते है।

—मंत्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

अनुक्रमणिका

अमिट रेखाएं

१

सच्चा कलाकार

राजा नन्द अपने रथिक के कमनीय कला-कौशल को निहार कर मुग्ध हो गया ! उसने कहा रथिक। जो चाहे वह मांग सकते हो। रथिक कोशा के मनोहारी रूप पर पागल था, उसे ज्ञान था कि कोशा राजमान्य है वह बिना राजा की आज्ञा के किसी को आँख उठाकर भी नही देखती है। रथिक ने नन्द से निवेदन किया कि मैं एक बार कोशा से मिलना चाहता हूँ।

राजा नन्द ने उसकी बात सहर्ष स्वीकार कर ली। राजा ने कोशा के पास सन्देश भिजवा दिया। रथिक सजधज कर कोशा के आवास पर पहुँचा ! कोशा के सामने जटिल समस्या थी। वह स्वयं पवित्र जीवन जीना चाहती थी और इधर राजाज्ञा थी।

कोशा ने रथिक के सामने आचार्य स्थूलभद्र के कठोर ब्रह्मचर्य व्रत की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। रथिक को वह बात पसन्द नही आई। उसने कहा चलो, प्रमदवन मे वहाँ क्रीड़ा करेंगे। प्रमदवन (गृहोद्यान) मे सघन हरियाली

थी। फूलो की मधुर-मधुर गंध मादकता पैदा कर रही थी। दोनो प्रमदवन मे पहुँचे। आम्रवृक्ष के नीचे आराम कुर्सी पर बैठ गये। कोशा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उसने आम्र फल पर एक बाण छोड़ा। बाण फल पर जा लगा। उस बाण को दूसरे बाण से, दूसरे वाण को तीसरे बाण से, तीसरे बाण को चौथे बाण से, इस प्रकार इतने बाण बीध दिये कि अन्तिम बाण का अन्तिम छोर रथिक के हाथ मे था। रथिक ने हलका-सा झटका देकर आम्र फल को शाखा से तोड दिया। रथिक ने कुशलता से एक-एक बाण को निकाला, आम्र फल हाथ मे आगया। उसने अत्यन्त स्नेह से आम का फल कोशा को समर्पित किया। वह विचारने लगा, मेरे कला कौशल से और स्नेह की अधिकता से कोशा पिघल जायेगी और अपने आपको समर्पित कर देगी, किन्तु उसकी इच्छा सफल न हो सकी।

कोशा कला की प्रतिमूर्ति थी। उसने मुस्कराते हुए कहा—रथिक! अब जरा मेरा भी कौशल देखलें। उसने उसी समय दासियो को आदेश देकर सरसो का ढेर करवाया। उस पर उसने सूई रखवाई। सूई की तीक्ष्ण नोक पर फूल-पते सजाये, और उस पर नृत्य प्रारम्भ किया। नृत्य लम्बे समय तक चलता रहा, पर महान् आश्चर्य, न तो सूई उनके पैरो को वीध पाई और न सरसो के दाने ही अस्त-व्यस्त हुए।

रथिक की आँखे इस अद्‌भुत कौशल को देखकर चुधिया गई। मेरी कला इस महान् कला के सामने पराजित है। मैं इस पर सब कुछ न्योच्छावर करता हूँ।

कोशा ने कहा – रथिक ! तुम जिस कला को दुष्कर कह रहे हो और उस पर इतने अनुरक्त हो, वह तो कुछ भी नही है ! कठिन कला तो मुनि स्थूलभद्र की थी।

रथिक ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—आप जिस स्थूलभद्र की इतनी अत्यधिक प्रशसा कर रही है, वे कौन है और उन्होने ऐसा कौन-सा कार्य किया ?

कोशा ने गौरव के साथ कहा—क्या आपको पता नही ? वे राजा नन्द के महामात्य शकडाल के पुत्र थे। वे मेरे पास बारह वर्ष तक रहे है। उनके साथ जीवन के वे मधुर क्षण बिताये है, किन्तु पिता के मरण से वे प्रबुद्ध हुए और जैनाचार्य संभूति विजय के पास उन्होने आर्हती दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेने के पश्चात् भी वे यहां पर वर्षावास के लिए आये थे। एकान्त-शान्त वातावरण, वर्षाऋतु का सुहावना समय, बढिया रस से छलछलाता हुआ भोजन, सुन्दर चित्रशाला, मेरा प्रेम भरा नम्र निवेदन। इतना सब कुछ होने के बावजूद वे अपनी साधना से किञ्चित मात्र भी विचलित नही हुए। उनका ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से अखण्ड रहा।

कोशा ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा— दूध को देखकर बिल्ली अपने मन को अधिकार में

नही रख सकती है, उसका मन उसे पाने के लिए मचल उठता है, वैसे ही रूपवान स्त्री को प्राप्त कर वड़े-वड़े साधक भी विचलित हो जाते है. परन्तु स्थूलभद्र काजल की कोठरी मे रहकर भी वेदाग रहे, क्या यह महान् कला नही है ?

रथिक के विचार शान्त हो गए थे। उसने कहा—मैं उस घोर तपस्वी का शिष्य वनना चाहता हूं, मैं भी उस महामार्ग पर चलना चाहता हूँ।

कोशा ने कहा—जिस दिन मुनि वर्षावास पूर्ण कर यहां से प्रस्थित हुए उसी दिन मैंने भी यह प्रतिज्ञा ग्रहण की थी कि राजा के द्वारा प्रेषित पुरुष के अतिरिक्त किसी के साथ क्रीडा न करु गी, पर अव मेरा मन सर्वथा शान्त है। मेरी यही हार्दिक कामना है कि अव पूर्ण पवित्र जीवन जीऊ।

रथिक ने अपना शिर कोशा के चरणो मे झुका दिया—तू मेरी गुरु है। तू अपना जीवन पवित्र रूप से विता। मैं भी स्थूलभद्र के चरणो मे रहकर अपना जीवन पवित्र वनाऊगा, सच्चा कलाकार वनूगा।

●

२

आचार्य स्थूलभद्र

भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग एक सौ आठ वर्ष के पश्चात् बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल गिरने से श्रमण सघ छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक बहुश्रुत श्रमण प्रासुक आहार-पानी के अभाव मे अनशन कर स्वर्गस्थ हुए। संघ की स्थिति दयनीय हो गई। आचार्य भद्रबाहु कुछ अपने शिष्यो को लेकर महाप्राण ध्यान की साधना करने के लिए नेपाल पहुच गए। कितने ही श्रमण दक्षिणांचल मे समुद्र के समीपवर्ती प्रदेश मे चले गए। भूखे पेट आगमो का पुनरावर्तन न होने से वे विस्मृत होने लगे।

दुर्भिक्ष मिटने पर संघ पटना मे एकत्र हुआ, उन्होने ग्यारह अंग संकलित किये। पर दृष्टिवाद के ज्ञाता आचार्य भद्रबाहु नही पधारे थे। उनके अतिरिक्त उसे कोई भी श्रमण जानता नही था, अतः संघ ने दो साधुओ को आचार्य भद्रबाहु के उपपात मे भेजकर निवेदन करवाया कि वे अतिशीघ्र ही पाटलिपुत्र आकर संघ को दृष्टिवाद की वाचना प्रदान करें।

आचार्य भद्रबाहु ने संघ के निवेदन को अस्वीकार करते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहा—मैं इस समय महाप्राण ध्यान की साधना कर रहा हूँ। यह साधना बारह वर्ष में पूर्ण होगी। मैं इस साधना को बीच मे नही छोड सकता। सघ मेरे इस कार्य मे साधक हो, पर बाधक न बने।

दोनो श्रमणो ने आकर सघ को आचार्य भद्रबाहु के निर्णय से अवगत कराया। उसी समय सघ ने एकत्र होकर गम्भीर अनुचिन्तन के पश्चात् निर्णय लिया कि दुबारा दो साधुओ को फिर से भेजा जाय और उनसे कहा जाय कि जो आचार्य संघ के आदेश की अवहेलना करता है उसे क्या दण्ड दिया जाय। आचार्य भद्रबाहु यही कहेगे कि उसे संघ से बहिष्कृत कर दिया जाय। तब उच्च स्वर से यही कहा जाय कि क्या भगवन्! आप भी उसी दण्ड के भागी नही है। संभव है, इससे हमारी समस्या का समाधान हो जाएगा।

दोनो श्रमणो ने जाकर आचार्य को वही कहा। आचार्य असमंजस मे पड गये। कुछ क्षणो के चिन्तन के पश्चात् आचार्य ने समस्या का समाधान करते हुए कहा—संघ महान् है। वह मेरे पर अनुग्रह करे। मेधावी शिष्यो को मेरे पास भेजें। मैं उन्हे प्रतिदिन सात वाचनाएं दूंगा। प्रथम वाचना भिक्षाचर्या के पश्चात्, तीन वाचनाए तीन काल वेला मे और तीन वाचनाएं सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् इस प्रकार संघ का कार्य भी सम्पन्न होगा और मेरी साधना मे भी बाधा उपस्थित न होगी।

दोनो साधुओ ने आकर आचार्य का मध्यम मार्ग संघ के समक्ष में रखा। सघ को प्रसन्नता हुई। सघ ने मुनि स्थूलभद्र आदि पांच सौ अध्ययन करने वाले मुनियो को और साथ ही एक विद्यार्थी मुनि की दो-दो सेवा करने वाले मुनियों को, इस प्रकार पन्द्रह सौ मुनियो को प्रस्थित किया। वे कुछ समय के पश्चात् आचार्य भद्रबाहु के सानिध्य मे पहुंचे। आचार्य ने वाचना देने के पूर्व बताया कि यहा पर कोई भी परस्पर एकान्त-शान्त स्थान पर बैठकर पुनः चिन्तन करे, किन्तु संभाषण न करें। आचार्य भद्रबाहु ने वाचना प्रारम्भ की। सभी साधु मनोयोग से अध्ययन में लग गये। महाप्राण ध्यान की साधना से अध्ययन मे समय की कमी रहती थी, साथ ही परस्पर वार्तालाप का निषेध होने से अध्ययनशील मुनियो का मन न लगा। कुछ समय के पश्चात् वे अध्ययन छोडकर पुनः पाटलिपुत्र आ गये।

एक मुनि स्थूलभद्र जमे रहे। वे स्थिर बुद्धि और प्रतिभा सम्पन्न थे। आठ वर्ष तक निरन्तर अध्ययन चलता रहा और आठ पूर्वो का अध्ययन भी सम्पन्न हो गया।

आचार्यभद्रबाहु ने स्थूलभद्र की परीक्षा के लिए प्रश्न किया—क्या तुम्हारा मन तो अध्ययन से नही उचटा है न ?

स्थूलभद्र ने नम्र निवेदन करते हुए कहा —भगवन्! मन तो नही उचटा है, पर समय बहुत कम मिलने से वह भरा भी नही हैं।

भद्रबाहु ने स्नेह की वर्षा करते हुए कहा—वत्स!

महाप्राण को साधना अब शीघ्र ही पूर्ण हो रही है उसके पश्चात् मैं तुम्हे पूरा समय दूंगा ।

स्थूलभद्र ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की, भगवन् ! कितना अध्ययन कर चुका हूँ और कितना अवशेष है ?

आचार्य भद्रबाहु ने स्मित मुस्कान के साथ उत्तर दिया -अभी तक तुमने बिन्दु ग्रहण किया है और सिन्धु अवशिष्ट है ।

स्थूलभद्र पहले से अधिक उत्साह के साथ अध्ययन मे जुट गये । जब कुछ दिनो के पश्चात् भद्रबाहु के महाप्राण ध्यान की साधना सम्पन्न हुई तब तक स्थूलभद्र दो वस्तु कम दस पूर्वों का अध्ययन पूर्ण कर चुके थे ।

महाप्राण ध्यान की साधना सम्पन्न होने पर आचार्य भद्रबाहु विहार कर पाटलिपुत्र पधारे और नगर के बाहर उद्यान मे ठहरे । मुनि स्थूलभद्र पास के लघु देवकुल में ध्यान कर रहे थे । यक्षा, यक्षदत्ता आदि सातो बहनें जो साध्वियां बन चुकी थी वे भाई के दर्शन के लिए आई । वे आचार्य भद्रबाहु के आदेश से लघु देवकुल मे गई । बहनों को आती हुई दूर से देखकर स्थूलभद्र को ज्ञान का अभिमान आगया और चमत्कार दिखाने के लिए सिंह का रूप बनाया । सातो ही बहनें वहां आई, पर भाई के स्थान पर सिंह को देखकर डर गई । उन्हे मन मे शंका हुई कि कही भाई को सिंह खा तो नही गया । वे उलटे पैरो आचार्य के पास आई, और आचार्य से सम्पूर्ण वार्ता निवेदन की । आचार्य ने उपयोग लगा कर कहा—वह सिंह नही, तुम्हारा ही भाई है, अब जाओ और दर्शन करो ।

सातो बहने भाई के पास पहुंची, वन्दना कर अपनी तथा अपने भाई श्रियक और अपनी दीक्षा की बात बताती हुई बडी बहिन साध्वी यक्षा ने कहा—आपके दीक्षा लेने के कुछ समय के पश्चात् हमारे मन मे भी संसार से विरक्ति हुई। जब हम सातो बहने दीक्षा के लिए तैयार हुई तो भाई श्रीयक ने भी कहा—मैं भी तुम्हारे साथ ही दीक्षा लूगा। उसने प्रधानमंत्री पद को छोडकर दीक्षा की तैयारी की। हम आठो ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। भाई श्रीयक अत्यन्त सुकुमार था। नवकारसी करना भी उसके लिए बहुत ही कठिन था। पर्युषण का पुनीत पर्व आया। मेरी प्रबल प्रेरणा से उसने पौरसी का प्रत्याख्यान किया, पौरसी सानन्द सम्पन्न हुई। मैंने पर्व की महत्ता बताते हुए दो पौरसी का आग्रह किया और इतना समय तो धार्मिक आराधना करते बीत जायेगा, भाई भूख से आकुल-व्याकुल था तथापि उसने मेरी बात की अवहेलना नही की उसने मेरी बात सहर्ष स्वीकार कर ली। इस प्रकार सध्या का समय निकट आ गया। मैंने भाई से फिर कहा—अब तो रात्रि का समय ही अवशिष्ट है, वह तो आनन्द से सोते-सोते ही बीत जायगा।

अनुज मुनि सुकोमल तो थे ही, पर अन्तर्मुखी वृत्ति वाले थे। क्षुधा-वेदना की परवाह किये बिना ही उन्होने उपवास का प्रत्याख्यान कर लिया। रात्रि धीरे-धीरे व्यतीत हो रही थी और भूख भी अपना उग्र रूप धारण कर रही थी। एक ओर समता थी और दूसरी ओर क्षुधा थी। पर अनुज श्रीयक अध्यात्म-साधना मे लीन हो गये।

किन्तु क्षुधा की अत्यधिकता से शरीर ने उनको साथ नही दिया और वे रात्रि में ही स्वर्गस्थ हो गये।

भाई के स्वर्गवास से मेरे मन में विचार उभरा कि भाई की मृत्यु का कारण मैं हूँ। मैंने यह हत्या की है। मेरा मानसिक सन्ताप प्रतिक्षण बढने लगा। मैंने श्रमण सघ से नम्र निवेदन किया कि प्रायश्चित देकर मुझे शुद्ध करे।

श्रमण सघ ने कहा—तुमने विशुद्ध-भावना से उपवास की प्रेरणा दी थी, अत प्रायश्चित का प्रश्न ही खड़ा नही होता।

संघ के प्रस्तुत निर्णय से मुझे सन्तोष नही हुआ। मैंने पुनः अनुनय किया यदि यह बात भगवान श्रीमन्धर स्वामी से सुन लूं तो मैं आश्वस्त हो सकती हूँ।'

संघ ने मेरे लिए कायोत्सर्ग किया, जिससे आकृष्ट होकर शासनदेवी उपस्थित हुई। उसने संघ को स्मरण करने का कारण पूछा। संघ ने मेरी ओर सकेत करते हुए कहा—इस साध्वी को श्रीमन्धर स्वामी के पास ले जाकर आश्वस्त करें।

शासनदेवी ने कहा—गमन और आगमन निर्विघ्नता से सम्पन्न हो एतदर्थ सघ तब तक कायोत्सर्ग मुद्रा मे रहे।

शासन देवी मुझे श्रीमन्धर स्वामी के समवसरण मे ले गई। मैंने भगवान को जाकर वन्दना की ओर पर्युपासना करने लगी। श्रीमन्धर स्वामी ने मुझे लक्ष्य कर कहा—भरत क्षेत्र से आने वाली साध्वी निर्दोष है।

भगवान के मुखारविन्द से अपने सम्बन्ध मे निर्णय सुनकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। मेरा संशय नष्ट हो गया। शासनदेवी पुनः मुझे यहाँ ले आई। संघ को मैंने समस्त घटना सुनाई। मैंने उस समय भगवान का जो उपदेश सुना था, वह एक बार के सुनने से मैंने उसे स्मरण रखा था, वह भावना, वियुक्ति, रतिकल्प और विचित्र-चर्या ये चार चूलिकाये भी संघ को अर्पित की, संघ ने दो चूलिकाये आचारांग के प्रथम दो अध्ययनो के रूप मे नियुक्त की और दो दशवैकालिक के अन्त मे नियोजित की। साध्वी यक्षा आदि ने मुनि स्थूलभद्र को सारी बात बतायी और वहा से लौट गई। मुनि स्थूलभद्र मुनि भी ध्यान से निवृत्त होकर आचार्य भद्रबाहु के पास पहुँचे। वाचना देने की प्रार्थना की, पर आचार्य ने स्पष्ट इन्कार करते हुये कहा—तू इसके लिए सर्वथा अयोग्य है।

मुनि स्थूलभद्र ने यह सुना तो उन्हे बहुत ही दुख हुआ। उन्होने अत्यन्त अनुनय-विनय के साथ पूछा—भगवन्! आप इतने समय तक मुझे बडी वत्सलता के साथ वाचना प्रदान कर रहें थे, आज सहसा यह अकृपा कैसे हो गई?

आचार्य भद्रबाहु ने कहा—तू पात्र नही है और अपात्र को दिया हुआ ज्ञान कभी फलवान नही होता।

मुनि स्थूलभद्र अपने जीवन का अवलोकन करने लगे, पर कोई भी स्खलना उन्हे स्मरण नही आई।

उन्होने पुनः निवेदन किया, भगवन् ! मुझे अपनी स्खलना स्मरण नही आ रही है, कृपया आप ही बतायें ।

सात्विक रोष प्रकट करते हुये आचार्य भद्रबाहु ने कहा—"पाप करके भी उसका स्मरण नही हो रहा है ?"

उसी क्षण मुनि स्थूलभद्र को अपना सिंह का रूप स्मरण हो आया । वे आचार्य देव के चरणों में गिर पडे—भगवन् ! क्षमा प्रार्थी हूं, मेरे से अविनय हुआ है। भविष्य मे कभी भी ऐसा न होगा ।

भद्रबाहु ने कडक कर कहा ज्ञान और साधना का किञ्चितमात्र भी अभिमान क्षम्य नही होता । जितना ज्ञान तुझे मिलना था मिल गया, अब नया ज्ञान नही मिल सकता ।

मुनि स्थूलभद्र ने वहुत ही अनुनय-विनय किया, पर आचार्य प्रसन्न न हुए । उन्होने सघ से प्रार्थना की । संघ एकत्र हुआ । आचार्य भद्रवाहु ने सघ से कहा—जो भूल मुनि स्थूलभद्र ने की है वैसी भूल भविष्य के साधु मन्द बुद्धि और आडम्बर प्रिय होने से करते रहेगे, अतः शेष पूर्वो का ज्ञान मेरे तक ही सीमित रहे, जो मुनि स्थूलभद्र को दण्ड दिया जा रहा है । वह भविष्य के साधुओ की शिक्षा की दृष्टि से भी है ।

संघ ने पुन आग्रह किया कि भगवन् ! आपको अनुग्रह करना चाहिए, क्योकि सभी मुनियो मे एक स्थूल-भद्र ही ऐसे मुनि है जो ज्ञान को ग्रहण करने में समर्थ है यदि आप इन्हे आगमो का ज्ञान नही देंगे तो वह

विच्छिन्न हो जायेगा। केवलज्ञान तो पूर्व ही नष्ट हो गया है और पूर्वों का ज्ञान भी न रहा तो धर्म संघ किस प्रकार चल सकेगा। जैन-सघ के भविष्य को सोचकर ही आपको निर्णय करना है।

भद्रबाहु ध्यान मग्न हुए, कुछ क्षणो के पश्चात् उन्होने कहा—मैं एक शर्त पर अगले पूर्वों की वाचना दे सकता हूँ, वह यह कि स्थूलभद्र इन पूर्वो की वाचना अन्य किसी साधु को नही दे सकेगा, यदि यह अभिग्रह स्वीकार्य है तो वाचना प्राप्त हो सकती है।

मुनि स्थूलभद्र ने आचार्य श्री की शर्त को सहर्ष स्वीकार किया! आचार्य भद्रबाहु ने पुन वाचना देनी प्रारम्भ की! कुछ ही समय मे मुनि स्थूलभद्र चौदह पूर्वों का समग्र ज्ञान प्राप्त कर गीतार्थ हो गए। आचार्य भद्रबाहु ने मुनि स्थूल-भद्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और वे स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य स्थूलभद्र विचरते हुए एक बार श्रावस्ती के बाहर उद्यान मे पधारे। हजारो नागरिक आचार्य के प्रवचन को सुनने के लिए उपस्थित हुए। आचार्य स्थूलभद्र का एक गृहस्थाश्रम का मित्र धनदेव वहा रहता था। आचार्य ने देखा मेरा प्रिय मित्र धनदेव क्यो नही आया है। सभव है, वह बीमार हो या कही बाहर गया हुआ हो, अतः आचार्य स्थूलभद्र स्वयं उसके घर पर पधारे। धनदेव की पत्नी धनेश्वरी ने आचार्य प्रवर का स्वागत किया। धनेश्वरी देवो से आचार्य प्रवर ने पूछा—धनदेव कहां है ? वह दिखलाई नही दिया ?

धनदेव का नाम सुनते ही धनेश्वरी की आँखे आंसुओं से छलछला आई। भगवन्! घर मे जितना भी धन था वह खर्च हो गया। कहते है कि पूर्वजो ने घर मे बहुत सारा धन गाड़ रखा है, पर स्थान का पता न होने से वह हमे मिल न सका धनहीन व्यक्ति का कही भी आदर नही होता, वे अन्त मे धन कमाने के लिए विदेश गये।

आचार्य स्थूलभद्र ने अपने निर्मल ज्ञान से जान लिया कि घर मे कहा पर धन गडा हुआ है। आचार्य जी जहां खड़े थे सामने ही एक स्तम्भ था, जिसके नीचे विराट् वैभव गड़ा हुआ था। धर्मोपदेश के व्याज से आचार्य स्थूलभद्र ने स्तम्भ की ओर हाथ का सकेत करते हुए कहा—भद्रे! संसार के स्वरूप को तो देखो, घर मे धन गड़ा पड़ा है और तेरा पति विदेश मे घूम रहा है।

धनेश्वरी समझ गई कि धन कहा पर गडा हुआ है। आचार्य कुछ दिनो तक श्रावस्ती मे रुके फिर अन्य प्रदेश की ओर प्रस्थान कर दिया।

कुछ समय के पश्चात् धनदेव विदेश से घर लौटा। धनेश्वरी ने प्रेम से उसका स्वागत किया, और कहा—आपके विदेश जाने के पश्चात् आपके परम मित्र जैनाचार्य स्थूलभद्र यहा पर पधारे थे। उन्होने इस कुटिया को भी पवित्र किया। धर्म देशना प्रदान करते समय उन्होने इस स्तम्भ की ओर सकेत किया था।

धनदेव चिन्तन करने लगा—महान् आचार्य की कोई भी प्रवृत्ति निष्प्रयोजन नही हुआ करती। अवश्य ही इस

स्तम्भ के नीचे धन गड़ा हुआ होना चाहिए। शुभ मूहूर्त मे धनदेव ने भूमि का उत्खनन किया! प्रभूत धन का भण्डार प्राप्त हुआ। आचार्य स्थूलभद्र की असीम कृपा से धनदेव धन्य हो गया। वह अपने पूरे परिवार के साथ आचार्य देव के दर्शन के लिए पाटलिपुत्र आया, और आचार्य से निवेदन किया—भगवन्! आपकी अपार कृपा से मैंने दरिद्रता के समुद्र को पार किया है। कृपया बताइए कि आपके इस ऋण से मुक्त होने के लिए मुझे क्या करना चाहिए।

आचार्य स्थूलभद्र ने कहा—आपको अर्हत् धर्म स्वीकार करना चाहिए।

धनदेव ! भगवन्—आपका जो भी आदेश होगा, वह मुझे स्वीकार है।

आचार्य ने उसी समय उसे सम्यक्त्व दीक्षा प्रदान की। वह जैन धर्म की आराधना व साधना करने लगा।

आर्य स्थूलभद्र तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम मे रहे। चौबीस वर्ष साधु पर्याय में और पैंतालीस वर्ष तक युगप्रधान आचार्य पद पर रहे। वीर निर्वाण सं० दो सौ पन्द्रह (२१५) मे उनका स्वर्गवास हुआ। वे अन्तिम श्रुत केवली थे।

३

महायज्ञ

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो गया। युधिष्ठिर हस्तिनापुर की राजगद्दी पर आसीन हुए। अश्वमेध महायज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमे भारत के बडे-बड़े राजा एकत्रित हुए। यज्ञ का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। सर्वत्र यह उद्घोपणा करवाई गई कि जिसे जो भी चाहिए उसे महाराजा युधिष्ठिर उदारता के साथ प्रदान करेंगे। हजारो व्यक्ति दान लेने के लिए उपस्थित हुए।

यज्ञ का अन्तिम दिन था। एक विचित्र नेवला यज्ञ-शाला मे आया। उसका आधा शरीर सुनहरा था और आधा साधारण नेवले का था, उसने वहां उपस्थित राजा, महाराजा, और विद्वान ब्राह्मणो को संबोधित कर मानव की भाषा मे कहा—

आप यह सोचकर मन में प्रसन्न हो रहें होगे कि हमने महान् यज्ञ किया है, पर यह आपका भ्रम है। इससे भी पूर्व इस कुरुक्षेत्र मे एक महान यज्ञ हो चुका है। एक गरीब ब्राह्मण ने एक सेर आटा अतिथि को दान में दिया

था, किन्तु आपके द्वारा अपार सम्पत्ति दान मे दी गई, पर वह उसके बराबर नही हो सकती ।

याचक ब्राह्मणो ने उस नेवले से कहा—तुम कौन हो, और यहा पर किस प्रकार आ गए और क्यो इस अश्वमेध यज्ञ की बुराई कर रहे हो ? यह वेद-विधि से किया गया है । जो भी इस यज्ञ मे आये है, उनका उचित सत्कार किया गया है, दान दिया गया है। सभी उससे सन्तुष्ट है ।

यह सुनते ही नेवला कहकहा लगाकर हँसने लगा, उसने कहा—मेरा किसी से कुछ भी विरोध नही है। तथापि मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह पूर्ण सत्य है । महाभारत युद्ध के पूर्व यहाँ एक ब्राह्मण परिवार रहता था, जो खेत मे बिखरे हुए अनाज के दानो को चुन-चुन कर इकट्ठा करके अपनी आजीविका चलाता था। उन्होने यह प्रतिज्ञा ग्रहण कर रखी थी, जो कुछ भी अनाज इकट्ठा हो, उसको बराबर बाँटकर तृतीय प्रहर के प्रारम्भ होने से कुछ समय के पूर्व ही खा लिया करें। किसी दिन नियत समय के पूर्व अनाज प्राप्त नही होता तो वे उपवास कर लिया करते थे और अनाज मिलने पर नियत समय पर खा लेते थे ।

एक समय भयकर अकाल पडा । अन्न पानी के अभाव मे लोग छटपटाने लगे । जब अन्न ही पैदा न हुआ तो, फसल काटने का प्रश्न ही न था और जब फसल न कटती तो अन्न के दाने खेतो में किस प्रकार बिखरते, अतः उस ब्राह्मण परिवार को अनेक दिनो तक भूखा रहना पड़ा ।

एक दिन ब्राह्मण, ब्राह्मणी उसका पुत्र और पुत्रवधू ये चारो भूखे और प्यासे धूप में परिश्रम से एक सेर ज्वार के दाने इकट्ठे कर सके। उसका आटा पीसा गया। उसे चार भागो मे बांटकर वे खाने के लिए बैठने लगे, उसी समय कोई भूखा ब्राह्मण आ गया। ब्राह्मण ने उठकर अतिथि का स्वागत किया। अतिथि को देखकर वे फूले नही समाये। उन्होने ने अतिथि से कहा—विप्रवर! मैं गरीब हूं। यह आटा मैंने नियम व परिश्रम से कमाया है, कृपया आप इसका भोजन कर मुझे अनुगृहीत करे।

ब्राह्मण ने अपना आटा अतिथि के सामने रख दिया। वह आटा उसने खा लिया। फिर भूखी नजर से ब्राह्मण की ओर देखा।

अतिथि सन्तुष्ट नही हुआ है, अतः ब्राह्मण देव चिन्तित हो उठे। उसकी पत्नी ने पति को चिन्तित देखकर कहा—नाथ! मेरे हिस्से का भी आटा ब्राह्मण देव को खिला दीजिए, यदि ब्राह्मण को उससे भी संतोष हो गया तो मैं भी संतुष्ट हो जाऊंगी।

ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा कथन ठीक नही है, पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी का भरण-पोषण करे। तुम्हारी भूख से हड्डिया निकल गईं है, मांस और रक्त का काम नही है, ऐसी स्थिति मे तुम्हे भूखी रखकर अतिथि का सत्कार करूं, यह मेरे लिए उचित नही है।

ब्राह्मणी ने कहा—नाथ! मैं आपकी सहधर्मिणी हूं। आपने स्वय भूखे रहकर अपने हिस्से का आटा अतिथि को

दिया है, वैसे ही मेरा हिस्सा भी खिला दीजिए। मेरी प्रार्थना को अमान्य न करे।

पत्नी के अत्यधिक आग्रह करने पर ब्राह्मण ने उसके हिस्से का भी आटा ब्राह्मण को खिला दिया, तो भी अतिथि की भूख नही मिटी। ब्राह्मण पहले से भी अधिक उदास हो गया। उसी समय ब्राह्मण-पुत्र ने कहा—मेरे हिस्से का यह आटा लीजिए और अतिथि को खिला दीजिए।

पिता ने कहा—वृद्ध की अपेक्षा युवक को अधिक भूख लगती है, अतः मैं तुम्हारा हिस्सा नही दे सकता।

पुत्र—पिता के वृद्ध होने पर उसकी रक्षा का भार पुत्र पर होता है। पिता ही तो पुत्र बनता है अतः मेरा हिस्सा स्वीकार कर अध-भूखे अतिथि को सतुष्ट करे।

पुत्र की बात को सुनकर ब्राह्मण को प्रसन्नता हुई। उसने उसका हिस्सा भी अतिथि को खिला दिया। तथापि अतिथि का पेट न भरा। ब्राह्मण किंकर्तव्य विमूढ हो गया। अब इन्हे कैसे सन्तुष्ट करूं?

उसी समय पुत्र-वधु ने कहा—मैं अपना हिस्सा भी अतिथि देव को समर्पित करती हूँ। यह उन्हें खिला दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—पुत्री! तुम अभी लड़की हो, तुमने कितने कष्ट किये है, तुम्हारा शरीर भूख से बहुत ही कृश हो गया है। तुम्हे भूखी रखकर अतिथि को दान देना न्याय नही है।

पुत्र-वधू ने कहा—'आप मेरे स्वामी के पिता है, गुरु के गुरु है, मेरा आटा आपको स्वीकार करना ही होगा।' यह सुनते ही ब्राह्मण की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने उसके हिस्से का आटा भी अतिथि के सामने रख दिया।

अतिथि ने उसे खाकर तृप्ति का अनुभव करते हुए कहा - तुम्हारे इस दान से मैं सन्तुष्ट हूं।

उस समय मैं वहा पर गया, उस आटे की सुगन्ध से मेरा सिर सुनहरा हो गया उस आटे के कण-कण मे लोटा, जिससे मेरा आधा शरीर सुनहरा हो गया। उसके बाद कई स्थानो पर गया, पर आधा शरीर सुनहरा नही हुआ। महान् यज्ञ की बात सुनकर यहां आया कि शेष शरीर सुनहरा हो जाय, पर आशा पूर्ण न हुई, एतदर्थ ही मैंने कहा—उस महान् यज्ञ के समान आपका यज्ञ नही है। उस दान के बराबर आपका दान नही है।

●

४

खीझ और रीझ

महाराजा अमरसिंह बहुत मनमोजी, अल्हड, और सरल हृदय का राजा था। उसे सवारी का बहुत ही शोक था। उसने सवारी के लिए विशेष हाथी रखा था। उस पर जो विशाल झूल डाली जाती थी, उस पर सोने-चांदी का जडाऊ का काम किया गया था और हजारो बहुमूल्य हीरे और मोती जड़े हुए थे। वह देखने मे बहुत ही सुन्दर लगती। एक बार सवारी निकल रही थी ! एक नाई हाथी के पीछे चल रहा था। चमचमाते हुए हीरे को देखकर उसके मुंह मे पानी आ गया। उसने इधर-उधर देखकर लोगो की ऑख बचाकर झूल मे से एक हीरा निकाल लिया। राजा अमरसिंह ने उसे हीरा निकालते हुए देख लिया, उन्हे बहुत ही क्रोध आया। सजा सुनाते हुए सिपाहियो को आदेश दिया 'इस नाई को लेकर तालाब पर जाओ, पानी मे डुबाओ और निकालो, जब तक कि इसके प्राण न निकल जाय।

उसी समय राजा की आज्ञा का पालन किया गया। सिपाही नाई को लेकर तालाब पर गये। पुनः-पुनः पानी

में डुबाने और निकालने लगे। नाई की स्थिति गंभीर से गंभीरतर होती गई। मरणासन्न होने लगा तभी नाई के मस्तिष्क मे एक बात आई और उसने सिपाहियो से निवेदन किया—अब मैं संसार से विदा हो रहा हूँ। प्रत्येक प्राणी की अन्तिम इच्छा पूर्ण की जाती है, मेरी भी एक इच्छा है उसे पूर्ण करे।

सिपाहियो ने नाई का सन्देश राजा के पास पहुँचाया, अमरसिंह कुछ क्षण तक चिन्तन करते रहे, फिर उन्होंने आदेश दिया कि नाई को दरबार मे उपस्थित किया जाय। नाई दरबार मे लाया गया। उसने राजा के चरण छूकर हाफते हुए कहा— राजन्! यह मेरा अन्तिम समय है, मैंने सुना था कि राजा साहब की खीझ और रीझ दोनो ही विचित्र हैं। खीझ का नमूना तो मैंने अपनी आँखो से देखा पर अन्तिम इच्छा आपकी रीझ को देखने की रह गई।

नाई की बात सुनकर राजा का चेहरा खिल उठा। उन्होंने वह हाथी सजाया, उस पर वही झूल डलवाई और नाई को उस पर बिठाकर उसके घर पर भिजवा दिया और उस सजे-सजाये हाथी को भी नाई को दान में दे दिया।

५

भक्त रैदास

भक्त रैदास का जीवन प्रामाणिक और पवित्र जीवन था। वे प्रतिपल-प्रतिक्षण भक्ति मे ही लीन रहते थे। कर्तव्य को विस्मृत होकर भक्ति करना उन्हे पसन्द नही था। परिवार के भरण-पोषण के लिए वे जूते गांठते थे। दिन भर के कठोर श्रम के पश्चात् जो कुछ भी कमा पाते उससे उनकी गृहस्थी चलती। आय कम होने पर भी सन्तोष अधिक था। वे संग्रह को पाप मानते। जब भी उन्हे समय मिलता उसे वे सत्संगति और प्रभु-भक्ति मे व्यतीत करते।

एक बार गंगा के किनारे भारी मेला लगा था। हजारो व्यक्ति दूर-दूर से गगा स्नान के लिए जा रहे थे। एक पण्डित भी उधर बढ़ रहा था। उसका अध्ययन कम था पर अहकार बहुत ज्यादा था। उसके जूते फट गये थे। ज्यो ही वे रैदास के गांव मे से गुजरे रैदास को जूते गाठते हुए देखकर अपने जूते भी ठीक करने को कहा। रैदास ने कहा—पण्डित प्रवर ! आप कुछ समय वृक्ष की शीतल

छाया मे विश्राम लीजिए। पहले जो अन्य कार्य आया हुआ है उसे सम्पन्न कर आपकी सेवा करूंगा।

पण्डितजी विश्रान्ति के लिए वृक्ष की शीतल छाया मे बैठ गये। अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए उन्होने गंगा के महत्त्व पर लम्बा चौड़ा भाषण दिया और कहा—कि तुम्हे भी गगा-स्नान कर पवित्र होना चाहिए।

रैदास ने कहा—पण्डितजी! मैं असमर्थ हूँ, मैं गगा स्नान के लिए चलूगा तो पीछे मेरा परिवार भूखा मर जायेगा। मैं प्रामाणिकता के साथ अपने दायित्व को निभाता हुआ जो भी समय मिलता है प्रभु स्मरण कर लेता हूँ।

पण्डितजी का अहं सातवे आसमान को छूने लगा। उन्होने घृणा से मुंह फेरते हुए कहा—तुम्हारा जैसा अधम कभी भी गगा-स्नान का पुण्य नही कमा सकता।

पण्डित के मिथ्या अहंकार को नष्ट करने के लिए भक्त रैदास ने कहा— पण्डित प्रवर! मैंने आपके जूते ठीक किये है, मैं उसका पारिश्रमिक आपसे नही लूंगा। एक मेरा छोटा-सा कार्य कर देंगे तो आपका अहसान जीवन भर नही भूलूगा।

पण्डित ने उत्सुकता से पूछा—बताओ क्या बात है?

रैदास ने अपनी जेब मे से सुपारी निकाली और पण्डित को देते हुए कहा—आप तो गंगा-स्नान का महान् पुण्य कमायेंगे, पर मैं वह नही कमा सकता। मेरी भी गंगा के प्रति गहरी निष्ठा है। मेरी ओर से यह सुपारी

आप गंगा को समर्पित करे, पर शर्त यह है कि यदि गंगा-माता स्वयं हाथ फैलाए तो दे, अन्यथा नही।

पण्डित का रोष भड़क उठा, मूर्ख कही के, आज दिन तक बड़े-बडे ऋषि और महर्षियो के लिए भी गंगा ने हाथ नही पमारे, क्या वह तेरी सुपारी के लिए हाथ पसारेगी।

भक्त रैदास ने उसी शान्ति के साथ कहा—यदि गगा-मैया हाथ न पसारे तो मेरी सुपारी पुन ले आइएगा, क्योकि आपको पुनः अपने घर लौटने का रास्ता तो यही है न।

पण्डित मन ही मन मे रैदास की मूर्खता पर हंस रहा था। वह सुपारी लेकर चल दिया। गंगा-स्नान से निवृत्ति के पश्चात् उसने सुपारी की परीक्षा के लिए हाथ मे सुपारी लेकर कहा—गगा मैया! हाथ फैलाओ, भक्त रैदास की सुपारी ग्रहण करो।

पर पण्डित देखता ही रह गया, उसी समय गगा मे से एक हाथ बाहर आ गया। उच्च स्वर मे आवाज हुई--मेरे भक्त की सुपारी मुझे दो, और मेरी ओर से यह कंगन रैदास को दे देना।

कगन बहुमूल्य हीरो से जडा था। उसकी कीमत करोडो की थी। कगन को देखकर पण्डित का मन ललचाया। उसने अपने घर जाने का मार्ग ही बदल दिया। कंगन रैदास को देंने के बदले वह उसे अपने घर ले आया। सभी ने तीर्थयात्रा की सफलता पर उसे बधाई दी। पण्डित ने अपने वृद्ध पिता को कंगन दिखाते हुए कहा—देखिए

गंगा-मैया ने मुझे यह समर्पित किया है। पिता ने कहा—तू महान् सौभाग्यशाली है जिससे गंगा तेरे पर प्रसन्न है। यह करोडो की कीमत का कंगन कोई भी देखेगा तो यही समझेगा कि चुरा कर लाया है। श्रेयस्कर तो यही है कि इसे राजा को भेंट कर दो जिससे उसकी कृपा हमारे परिवार पर रहेगी। और हम सदा के लिए सुखी वन जायेगे।

पण्डित को पिता का सुझाव अच्छा लगा। वह कंगन को लेकर राज-सभा मे पहुँचा। राजा को कंगन समर्पित करते हुए गंगा का प्रसग सुनाया तो राजा के आश्चर्य का पार न रहा। राजा ने कगन रख लिया और एक लाख रुपए उसे पुरस्कार मे दे दिये।

राजा ने वह कगन अपनी रानी को भेंट किया। रानी ने कगन को पहना, सभी ने उसकी सराहना की। इतने मे एक दासी ने कहा—रानी साहिबा ! एक हाथ तो सुन्दर लगता है पर दूसरा हाथ सूना-सूना लग रहा है। क्या दूसरा ऐसा कंगन नही है क्या ?

दासी की बात रानी के दिल मे चुभ गई। उसने तत्काल राजा को बुलाकर कहा। राजा ने पण्डित को बुलाकर दूसरा कंगन लाने का आदेश दिया। पण्डित के तो होश ही गायब हो गए। वे हक्के-बक्के होकर जमीन की ओर देखने लगे। क्या उत्तर दूँ समझ मे नही आ रहा था। तभी राजा ने लाल आंखे कर कहा कि शीघ्र ही आदेश का पालन होना चाहिए। पण्डित ने धीरे से

गंगा की ओर प्रस्थान किया। गंगा के किनारे खड़े रहकर उसने प्रार्थना की। गंगा ने प्रकट होकर कहा—नराधम। तुझे शर्म नही आती, वह कंगन मैंने अपने भक्त रैदास को देने के लिए दिया था, तूने उसे बताया भी नही, और राजा को दिया, और राजा के दिये हुए रुपए भी हजम कर गया। अब भी रुपए ले जाकर रैदास को दे, अन्यथा तुझे नष्ट कर दूंगी।

मृत्यु के भय से घबराया हुआ, पण्डित उलटे पैरो घर पहुँचा और वे सारे रुपए लेकर रैदास के यहाँ पहुँचाये। रुपए रैदास के सामने रख कर रोते रोते सारी घटना सुनादी। भक्त रैदास ने कहा—मैं रुपये लेकर क्या करू, इसे रखने के लिए मेरे पास जगह ही नही है। मैं बिना श्रम का पैसा नही ले सकता। आप ही इन्हे ले जाइये।

पण्डित ने रोते हुए कहा—मै तो मारा गया। मेरे पर गंगा रुष्ट है, राजा रुष्ट है, और आप भी रुष्ट हो गए। मेरा अपराध क्षमा करो, मेरी रक्षा करो।

भक्त रैदास के सामने कठिन समस्या थी कि वह किसी से कुछ भी लेना नही चाहता था, और प्रतिदिन श्रम करते गंगा तक भी नही जा सकता था। उसका दयालु हृदय पण्डित के करुण-क्रन्दन को सुनकर द्रवित हो गया। उसने सोचा, तो स्मरण आया कि 'मन चगा तो कठौती मे गंगा' मैंने आज दिन तक किसी का भी मन से बुरा नही किया। यदि मैं यहां से भी गंगा की स्तवना करू तो कंगन मुझे मिल सकता है। उसने चमड़ा भिगोने की कठौती अपने

सामने रखी और पानी को गगा मान स्तवना करने लगा। पण्डित को यह देखकर गुस्सा आ गया, उसने कहा—अरे पापी! इस अपवित्र पानी को गगा मानता है।

भक्त रैदास भक्ति मे लीन था। कुछ ही क्षण मे गगा माता हाथ मे कगन लेकर उपस्थित हुई, उसके हाथ में कंगन दिया और उसके हाथ मे रखी सुपारी को लेकर अन्तर्ध्यान हो गई। रैदास ने वह कगन पण्डित को दे दिया।

पण्डित देखता ही रह गया। उसने श्रद्धा से भक्त रैदास से चरणो मे सिर झुका दिया। तुम चमार नही ब्राह्मण हो, तुम्हारी साधना महान है।

६

राजकुमार का चातुर्य

देवनगर के राजा विक्रम की स्वर्णलता इकलौती पुत्री थी, अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा की धनी थी, साथ ही रूप मे अप्सरा के समान थी। राजा उसका पाणिग्रहण ऐसे मेधावी राजकुमार के साथ करना चाहता था, जो उनके परीक्षण प्रस्तर पर खरा उतरे। राजा ने अपने बुद्धिमान मंत्री से मंत्रणाकर बीहड़ जंगल मे दुर्गम घाटियो के बीच पर्वत की अपत्यकाओ व उपत्यकाओ से घिरी हुई सम-भूमि थी, जहा पर पहुँचना किसी के लिए संभव नही था, वहां पर महल बनाया। महल बनाने वालो के लिए कलाकार व मजदूरो को आंखो पर पट्टी बांध कर वहा पर ले जाया गया और पुन उसी प्रकार लाया गया। राजकुमारी स्वर्णलता को उसी महल मे रखा गया।

राजा विक्रम ने यह उद्घोषणा करवाई कि तीन दिन की अवधि मे जो राजकुमार राजकुमारी स्वर्णलता को खोज लेगा उस राजकुमार के साथ राजकुमारी का प्राणि-ग्रहण किया जायेगा। जो राजकुमार यह कार्य न कर सकेगा वह बन्दी बना दिया जाएगा।

राजकुमारी के सौन्दर्य और बुद्धि-कौशल की चर्चाएँ फैल चुकी थी। अनेक राजकुमार उसके साथ विवाह करना चाहते थे, उन्होने राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया, पर प्राप्त न कर सके। अनुत्तीर्ण होने से राजा के द्वारा बन्दी बना लिए गए।

राजकुमार शौर्यसिह ने स्वर्णलता के सम्बन्ध में सुना, उसे पाने के लिए उसका मन भी ललक उठा, साथ ही यह भी सुना की बीसो राजकुमार परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने से बन्दी बना लिए गए है। शौर्यसिह ने गंभीरता से विचार विमर्श कर यह निर्णय किया कि अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाकर राजकुमारी को प्राप्त भी करना है और साथ ही बन्दी राजकुमारो को मुक्त भी करना हैं, अतः बन्दी राजकुमारो के पिताओ को अपने यहा निमन्त्रण देकर बुलवाया और कहा—यदि आप कुछ भी सहयोग प्रदान करे तो मैं आपके पुत्रो को एक महिने मे मुक्त करवा सकता हूं। सहयोग मे आप केवल सौ-सौ तोला सोना और पांच-पॉच सहस्र मुद्राएँ दीजिए। यदि एक महीने की अवधि मे मुक्त न हो तो आपको व स्वर्ण मुद्राएं लौटा देगे।

सभी राजा अपने पुत्रो को मुक्त करवाना चाहते थे, उन्हे वह योजना पसन्द आ गई। उन्होने उसी समय सौ-सौ तोला सोना और पांच-पाच हजार मुद्राएँ राजकुमार को दे दी।

राजकुमार उस स्वर्ण और धन को लेकर देवनगर आया। उसने राजकुमारी के महल की अन्वेषणा की, पर

पता न लग सका। लोगो ने कहा—राजकुमारी ऐसे महल मे है उसका मार्ग मंत्री और राजा के अतिरिक्त कोई भी नही जानता।

शौर्यसिह प्रतिभा का धनी था, वह एक महान् कलाकार स्वर्णकार के पास पहुँचा, और स्वर्ण का ढेर उसके सामने रखकर कहा कि इस सोने से ऐसा कलात्मक घोड़ा बनाओ कि जिसके पेट मे एक व्यक्ति आराम से बैठ सके। और रत्नो के जडाई का कार्य इस तरह से किया जाय कि अन्दर बैठा व्यक्ति किसी को न दीख सके। आज से पन्द्रह दिन के पश्चात् राजा विक्रम का जन्म दिन आने वाला है उसके उपलक्ष मे यह बहुमूल्य उपहार भेंट करना है, अतः शीघ्र तैयार कर दो।

कुछ ही दिनो मे घोडा तैयार हो गया। राजकुमार शौर्यसिह को घोडा बहुत ही पसन्द आया। उसने स्वर्णकार को उपहार प्रदान करते हुए कहा—मुझे घोडे मे बिठाना, और जन्म-दिवस के उपलक्ष मे घोड़ा राजा को भेंट कर देना और साथ ही राजा से यह निवेदन भी कर देना कि यह उपहार राजकुमारी को भी दिखाया जाय। स्वर्णकार सहमत हो गया।

जन्मदिवस के उपलक्ष मे अनेकों व्यक्तियो ने राजा को उपहार अर्पित किए, पर सबसे बहुमूल्य और अद्‌भुत उपहार स्वर्णकार का रहा। राजा ने उसे बहुत ही प्रेम से ग्रहण किया। समय देखकर स्वर्णकार ने कहा—कितना अच्छा हो, यह उपहार राजकुमारी को भी दिखाया जाय। राजा

ने स्वर्णकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसी दिन राजा ने अनुचरो के आँखो पर पट्टियां बॉध कर घोडे को ले चलने लिए आदेश दिया। राजा आगे चल रहा था और मंत्री पीछे। विकट घाटियो को लाघते हुए वे कुछ ही घटो मे राजकुमारी के महलो मे पहुंच गये। राजकुमारी घोड़े को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। घोडे को वही पर छोडकर मत्री और और राजा लौट गए।

राजकुमारी हाथ फिराकर अच्छी तरह से घोड़े को देख रही थी। सहसा घोडे का पेट खुला और उसमे से शौर्यसिह बाहर निकल आया। रात्रि के समय एक युवक को अपने महल मे देखकर राजकुमारी स्तम्भित थी। शौर्यसिह ने उसी समय कहा—राजकुमारी ! भयभीत न बनो, मैं कोई उचक्का युवक नही हूँ, मैं राजकुमार हूं, विना तेरी इच्छा के मैं एक कदम भी आगे न रखू गा। मेरी इच्छा तुम्हारे साथ विवाह की है, यदि तुम चाहोगी तो तुम्हारे पिता की प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकेगी।

राजकुमार शौर्यसिह के दिव्य रूप और वाक् चातुर्य को देखकर राजकुमारी स्वर्णलता अत्यधिक प्रभावित हुई। उससे कहा—आप मेरे पिता की प्रतिज्ञा पूण करे।

रात भर स्वर्णलता के साथ शौर्यसिह की मधुर-मधुर वार्तें होती रही। रात पूर्ण होने के पहले ही शौर्यसिह घोड़े में जाकर बैठ गया।

दूसरे दिन राजा राजकुमारी के महलो मे आया, घोड़े के सम्वन्ध मे चर्चायें चली, राजकुमारी ने मुक्त

कंठ से घोड़े की प्रशसा की। राजा ने पूछा—बताओ ! इसमे कोई कमी तो नही है न !

राजकुमारी—घोड़ा सुन्दर ही नही, अति सुन्दर है। यदि इसकी आँखे रत्नो के स्थान पर मोती की होती तो अधिक सुन्दर रहती। राजा ने कहा—इसमे क्या बडी बात है, स्वर्णकार से कहकर परिवर्तन करा दिया जायेगा।

राजा ने उसी दिन अनुचरों से घोड़ा स्वर्णकार के यहाँ पहुँचा दिया। राजा के आदेश के अनुसार घोड़े की आख में परिवर्तन कर दिया गया। शौर्यसिंह के स्थान पर किसी भारी वस्तु को उसमे रख दिया गया।

राजकुमार शौर्यसिंह राजा विक्रम की राज सभा में पहुँचा और राजकुमारी के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा।

राजा विक्रम ने तीन दिन में राजकुमारी के महल को खोजने की बात कही। राजकुमार ने तपाक से कहा—यदि मैं एक दिन में खोज दू तो क्या पुरस्कार देगे।

राजा विक्रम—जो आप चाहेगे, वह

राजकुमार—सभी बन्दी राजकुमारो को मुक्त करना होगा।

शौर्यसिंह ने उसी समय राजकुमारी के महल को खोज निकाला। सभी चकित थे। राजा विक्रम की

जिज्ञासा पर राजकुमार ने स्वर्ण-अश्व की सारी घटना सुना दी, मैंने आते और जाते मार्ग का पता लगा लिया था।

राजकुमारी स्वर्णलता के साथ उत्साह के क्षणो में पाणि ग्रहण सम्पन्न हुआ, और सभी बन्दी राजकुमारो को मुक्त कर दिया। सर्वत्र राजकुमार के बुद्धि-कौशल की प्रशंसा होने लगी।

●

७

विजय का रहस्य

बहुत ही पुरानी घटना है, उस समय कलिंग देश पर एक युद्ध प्रेमी राजा राज्य करता था। उसके पास विराट् सेना थी। वह सभी को युद्ध के लिए ललकारता रहता था। आतक सर्वत्र छा गया, कोई भी उससे लड़ने का साहस नही करता था। वह जिससे भी लडने को तैयार होता वह पहले ही राजा के सामने घुटने टेक देता।

एक दिन कलिंग राज ने अपने मंत्रियो से कहा—मैं इस प्रकार बैठा-बैठा ऊब गया, मेरे से कोई भी युद्ध करने को प्रस्तुत नही है, कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे मेरी इच्छा पूर्ण हो सके।

एक चतुर मंत्री ने कहा—राजन्। आपकी कन्याएं रूप और गुण में अद्वितीय है। अनेक राजा उनसे विवाह करने के लिए लालायित है। राजकुमारियों को स्वर्ण रथ मे बिठाकर चारों ओर परदा डाल दीजिए, और सारथी को यह आदेश दे दें कि सभी राज्यो मे क्रमशः रथ को ले जाये, और रथ के आगे सैनिक यह उद्घोषणा करे कि जो भी व्यक्ति अपने को मर्द मानता हो, वह इन कन्याओं

के रथ को अपने महलो मे ले जा सकता है बशर्ते कि उसे कलिग राज के साथ युद्ध करना पड़ेगा। संभव है कोई मूर्ख राजा इसके लिए तैयार हो जायेगा।

कलिग राज को यह युक्ति बहुत पसन्द आई। उसने उसी समय अपनी कन्याओ को बिठाकर रवाना कर दी।

रथ बिना रुकावट के निन्तर आगे बढता हुआ चला जा रहा था। सभी कलिगराज से भयभीत थे। रथ घूमता हुआ अस्सकराज की ओर बढा। अस्सकराज ने उपहार आदि देने का सोचा, किन्तु महामंत्री नन्दिसेन ने कहा — राजन्। पौरसहीन कहलाने के बजाय तो पुरुषार्थ दिखाते हुए मरना श्रेयस्कर है। आप उनके चरणो मे समर्पित न न होइए, पर ससम्मान उन कुमारियो को महल मे बुला लीजिए। भविष्य मे जो होगा वह देखा जायेगा। लोगो को ज्ञात तो हो कि अभी दुनिया मे एक सच्चा मर्द तो है।

मंत्री नन्दिसेन की प्रबल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर उस्सकराज ने राजकुमारियो को महल के भीतर बुलवा लिया और कलिगराज को सूचना भिजवा दी।

कलिगराज तो युद्ध के लिए पहले से ही छटपटा रहा था। उसकी भुजाए फडक रही थी। वह अपनी विराट् सेना सजाकर अस्सकराज की ओर चल पड़ा।

कलिगराज की सेना अस्सकराज के राज्य की सीमा पर आकर रुकी, इधर से अस्सकराज भी अपनी सेना लेकर वहां पहुँच गया।

युद्ध भूमि के सन्निकट ही एक पहुँचे हुए योगीराज

की कुटिया थी। कलिंगराज वेश परिवर्तन कर महात्मा के पास पहुँचा और पूछा भगवन्। युद्ध मे किस राजा की विजय होगी ?

महात्मा ने कहा—इस प्रश्न का सही उत्तर आज नही कल दूगा। राज मे महात्मा ने देव को आह्वान किया, और वही प्रश्न उसके सामने दुहराया।

देव ने कहा—क्या पूछते है विजय तो कलिंगराज की ही होगी। युद्ध मे अस्सकराज को कलिंगराज की सेना में सफेद रंग का बैल दिखाई देगा, वही बैल-उसकी विजय श्री का कारण होगा। और अस्सकराज की सेना मे कलिंग-राज को काला बैल दिखाई देगा, जो महान् अशुभ है, वही उसके पराजय का कारण होगा।" देव इतना बताकर अन्तर्ध्यान हो गया। दूसरे ही दिन कलिंगराज ने योगी-राज से पूर्ववत ही गुप्तवेश में आकर प्रश्न किया। योगी-राज ने देव की बात बतादी कि विजय कलिंगराज की होगी"

कलिंगराज उछलता हुआ अपने डेरे मे आगया, और उसने योगीराज की भविष्यवाणी की बात अपने सैनिकों को बतादी। गुप्तचर के द्वारा अस्सकराज के पास ये समाचार पहुँचे, वह पहले से ही डरा हुआ था और यह सुनते ही वह अध-मरा हो गया। मत्री नन्दिसेन ने समझाया पर उसका राजा के मन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

मत्री नन्दिसेन स्वयं योगी की झौपड़ी मे गया और सारी बातें पूछी, योगी ने विस्तार से उसे वह बता दिया।

मत्री ने पुनः प्रश्न किया कि जीतने वाले और पराजित होने वाले के क्या शुभ और अशुभ लक्षण होगे ?

योगी ने कहा—अस्सकराज को कलिगराज की सेना मे सफेद बैल दिखाई देगा, वही कलिगराज की विजय का कारण होगा और कलिगराज को अस्सकराज की सेना में काला बैल दिखलाई देगा वही उसकी पराजय का कारण होगा ।

मत्री नन्दिसेन अपने स्थान पर लौट आया । किन्तु वह निराश नही हुआ । उसने एक हजार चुनिन्दे वीर सैनिको को अपने पास बुलाया और कहा—सत्य कहना, क्या तुम अपने राजा के लिए प्राण दे सकते हो, सभी ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया । नन्दिसेन ने कहा—तो तुम अपने राजा के कल्याण हेतु इस पहाड़ से कूद पड़ो । सभी आगे बढे, पर नन्दिसेन ने कहा इस समय नही, पर समय पर आत्म-बलिदान के लिए तैयार रहना ।

कलिगराज और उसके सैनिक पहले से ही अपनी विजय मानकर गुलछर्रें उड़ा रहे थे । उसने विजय के लिए कोई विशेष प्रयत्न नही किया, पर अस्सकराज अपनी पूरी शक्ति लगाकर लड रहा था । नन्दिसेन उसे बराबर प्रेरणा दे रहा था । अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी कलिगराज की सेना पीछे नही हट रही थी । नन्दिसेन ने अस्सकराज से पूछा—राजन् ! क्या आपको कलिगराज की सेना मे कोई जानवर दिखलाई दे रहा है ?

राजा ने कहा—उसकी सेना में एक विचित्र ढंग का श्वेत बैल दिखलाई दे रहा है।

नन्दिसेन ने अपने विश्वस्त एक हजार सैनिको को आगे कर कहा—राजन्। सर्व प्रथम आप उस बैल को मार दीजिए, उसी बैल के कारण कलिंगराज की विजय है, फिर शत्रुओ को परास्त कीजिएगा।

राजा अस्सकराज वीर सैनिकों के साथ शत्रु की सेना को परास्त करता हुआ उस दिव्य बैल के पास पहुँच गया, और उसे समाप्त कर दिया। दैवी बैल के समाप्त होते ही कलिंगराज की सेना मैदान छोडकर भागने लगी। कलिंगराज का विजय स्वप्न मिथ्या हो गया। प्राण बचाकर भागते हुए कलिंगराज ने महात्मा को पुकारा कि अरे धूर्त। तेरी भविष्य वाणी को सत्य मानकर मैंने बडा धोखा खाया है तेरी बात पर विश्वास न कर यदि मन लगाकर युद्ध करता तो यह दुर्गति न होती।

योगी को भी देव-वाणी मिथ्या होने से आश्चर्य हुआ। उसने पुनः रात में देव को आह्वान किया। देवने कहा—भाग्य पुरुषार्थी व्यक्ति को ही सहायता करता है। उसने सयम, धैर्य और साहस के साथ पराक्रम दिखाया उसी से उसे सफलता मिली है। पुरुषार्थी देव-वाणी को भी मिथ्या कर सकता है।

(बौद्ध साहित्य में से)

८

प्रतिभा की प्रतिभा

राजा क्षितिप्रतिष्ठित के पास एक मोर था, वह बड़ा ही मनोहर था। राजा जब भी भोजन करने बैठता तब प्रथम उसे भोजन कराता, क्योकि विष-मिश्रित भोजन कर वह नाचने लगता, विष का उस पर साधारण रूप से असर नही होता।

राजमहल के पास ही प्रवीण श्रेष्ठी का मकान था। प्रवीण की पत्नी प्रतिभा गर्भवती हुई। उसे मयूर मांस खाने की प्रबल इच्छा हुई। राजा का मोर घूमता हुआ वहा आया, और प्रतिभा ने उसे मार कर अपनी दोहृद इच्छा पूर्ण की।

भोजन का समय हुआ, पर मोर महल मे तलाश करने पर भी नही मिला, तो राजा ने उसकी खोज प्रारम्भ की, पर कुछ भी अता-पता न लगा। राजा ने उसकी खोज के लिए नगर मे ढिढोरा पिटवा दिया कि जो मोर को तलाश करके लायेगा उसे पुरस्कार प्रदान किया जायेगा।

एक बुढिया नाईन ने ढिढोरा सुनकर सात दिन मे

खोज निकालने का वायदा किया। उसने सोचा मयूर राजमहल के आसपास के घरों मे ही गया होगा अतः वह सर्वप्रथम प्रवीण के भव्य भवन में गई। प्रतिभा से उसने पूछा—आप गर्भवती है, आपको क्या दोहृद उत्पन्न हुआ। बुढ़िया नाईन की बातो को चतुराई से प्रतिभा इतनी प्रभावित हुई थी कि उसने सारा मयूर काण्ड सुना दिया।

मयूर का सही पता लगाने से बुढिया अत्यधिक प्रसन्न थी, वह शीघ्र ही वार्तालाप पूर्ण कर राजमहलों में गई और राजा को अभिवादन कर मयूर की कहानी को नमक मिर्च लगाकर सुनादी और पुरस्कार की प्रार्थना की।

पर राजा ने उसकी बात का प्रतिवाद करते हुए कहा—तेरी बात मिथ्या है, मैं तेरी बात स्वीकार नही कर सकता, प्रवीण और प्रतिभा को मै जानता हूँ वे ऐसे नही हैं।

वूढी नाईन ने कहा—आप मेरी बात पर भले ही विश्वास न करें, पर प्रतिभा के मुह से मैं कहला दू फिर तो विश्वास करेंगे न! आप मेरे साथ चले, मैं अपनी चतुराई से आपको सारी बात सुनवा दूँगी।

वेष परिवर्तन कर राजा प्रवीण के मकान के सहारे खडा हो गया। बुढिया ने मकान मे प्रवेश किया और उच्च स्वर से बोलने लगी कि मेरा मन कहता है कि इस समय तुम्हारे पुत्र होगा, यदि तुम्हारे पुत्र हो तो मुझे मिठाई खिलानी पडेगी और पुरस्कार भी देना पड़ेगा।

प्रतिभा ने मुस्कराते हुए कहा—तुम्हारी बात सत्य सिद्ध हो! तुम कहोगे वैसा ही किया जायेगा। कुछ समय प्रतीभा की मीठी-मीठी बातो मे उलझा कर उसने धीरे से पूछा—बताओ न! तुमने राजा के मयूर को कैसे मारा।

प्रतिभा ने कहा—वह प्रतिदिन मेरी दीवाल पर आता ही था। खाने के प्रलोभन से वह मेरे आगन में उतरा और मैंने एक झटके मे उसकी गर्दन तोड़ दी, और हृदय का मॉस पकाकर खा गई। और पंख, पैर, हड्डी आदि भूमि मे गाड़ दिये।

राजा को लक्ष्य मे रखकर नाईन ने कहा—दीवाल तुम भी सुन लो प्रतिभा क्या कहती है।

प्रतिभा सकपका गई, वह समझ गई कि यह दीवाल के बहाने किसी को संकेत कर रही है, यह तो षडयंत्र है।

उसने उसी क्षण कहा—मेरा सपना टूट गया और आँख खुल गई।

आश्चर्य चकित हो नाईन ने पूछा—क्या तुम सपने की बात कर रही हो।

प्रतिभा—आप क्या समझी, क्या मैं कभी हत्या जैसा निकृष्ट कार्य कर सकती हूँ। तुम इतने दिनो से मेरे सम्पर्क मे रही हो तथापि तुम मुझे नही पहचान सकी।

नाईन के तो पैरो के नीचे की जमीन ही खिसकने लगी। उसका सिर चकराने लगा, पैर लडखडाने लगे।

जब वह राजा के पास पहुँची तब राजा ने उसे फटकारते हुए कहा—तुम्हे लज्जा नही आती बुढी हो, फिर भी झूठ बोलती हो। जाओ इस समय मैं तुम्हे माफ करता हूँ और जाकर मोर की तलाश करो।

वह मोर को तलाश करती रही पर मोर उसे मिला नही।

●

६ | सन्देह की मुक्ति

एक श्रेष्ठी अपने प्यारे पुत्र की शादी कर लौट रहा था। उसका शहर उस शहर से अस्सी मील दूर था। बारात ने रात्रि विश्राम जंगल मे किया, पास ही सरिता की सरस धाराएं वह रही थी, चारो ओर हरियाली छा रही थी, सघन वृक्षावली थी। सायकाल का भोजन कर सभी लोग सो गये। दुलहिन जग रही थी, उसे अभी तक निद्रा नही आई थी। आधी रात हो चुकी थी, सहसा एक शृगाल के शब्द उसके कानों मे गिरे—

यदि समझ है तो सुनो, जम्बुक वचन उदार।
नदी तीर शव जाघ मे, रत्न पड़े है चार॥

दुलहिन पशु-पक्षियो की आवाज पहचानती थी। वह बहुमूल्य चार रत्नो के लेने का लोभ सवरण न कर सकी। वह उसी क्षण उठी। उसने चारो ओर पैनी दृष्टि से देखा कि कोई जग तो नही रहा है उसे अनुभव हुआ कि सभी गहरी निद्रा में सो रहे है, वह अकेली नदी की ओर चल पड़ी। दुल्हा की निद्रा एकाएक खुल गई। दुलहिन की

गति-विधियो को जानने के लिए वह भी धीरे से उसके पीछे हो गया। अंधेरी रात थी, भयानक जगल था और अकेली दुलहिन को इस प्रकार नदी की ओर जाते हुए देखकर उसके मन में अनेक प्रश्न उद्‌बुद्ध हो रहे थे, विना किसी आहट के वह उसका अनुगमन कर रहा था। दुलहिन नदी के तट पर पहुँची, उसने झाडियो के बीच मे शव पड़ा हुआ देखा, उसने घसीट कर बाहर निकाला, उसकी जांघ को ध्यान पूर्वक देखा, उसे ज्ञात हुआ कि यहां टांके लगे हुए है अपने पास की छुरी से उसे चीर कर। चार अनमोल रत्न निकाल लिये, रत्नो को लेकर, नदी मे स्नानकर वह पुन· अपने शिविर मे आकर सो गई। उसे सन्देह ही नही था कि उसका कोई पीछा कर रहा है।

दुल्हे ने जब यह देखा तो उसे यह विश्वास हो गया कि उसकी पत्नी डायन है, उसने मुर्दे के मांस को खाया है, यदि कभी इसे इस प्रकार मास न मिलेगा तो यह मुझे खा जायेगी। उसकी सारी प्रसन्नता समाप्त हो गई। उसके सारे रंगीन सपने एक दम मिट गये।

दुलहिन ससुराल पहुँची, उसने मन मे अनेक कल्पनाएं संजोई थी, पर पति की सख्त नाराजगी देखकर वह सहम गई, उसने बहुत चिन्तन किया, पर कोई भी कारण उसे ज्ञात न हो सका।

दिन पर दिन बीतते चले गये, पर दोनो का दुराव ज्यो का त्यो बना रहा। सेठ और सेठानी ने अनेक प्रयत्न किये, पर कुछ भी सुखद परिणाम नही आया। एक दिन

दुःखित हृदय से सेठ ने पुत्र वधु को कहा—बेटी चलो मैं तुम्हे तुम्हारे पीहर पहुँचा दू, कुछ दिन दूर रहोगी तो सभव है स्नेह का सागर उमड़ पड़े।

पुत्र वधु को लेकर सेठ चल दिये। उसी स्थान पर सेठ ने रात्रि विश्राम किया। पुत्र वधु जग रही थी, सेठ को भी अभी तक झपकी नही आई थी। पास के पेड़ पर बैठा हुआ कौआ बोला—

यदि समझ है तो सुनो, कौए के उद्‌गार।
दो वृक्षों के बीच में, चरु गड़े हैं चार॥

पुत्र-वधु को पुरानी स्मृति ताजा हो गई। वह सारा दृश्य आखो के सामने नाचने लगा, हो न हो उस रात्री को छिपकर वह दृश्य किसी ने देखा है अत उसने उसी समय कहा—

पति का रति न दोष है, है ऐसा ही भाग।
जम्बुक ने तो यह किया, अब क्या बाकी काग॥

हे काग। शृगाल की बात को सुनकर तो चार रत्न लिये, उससे तो मेरे पति रुष्ट हो गये और मुझे छोड़ दी, यदि अब मैं सोना लूगी न जाने क्या होगा, इसलिए मैं सोना लेना नही चाहती हूँ।

श्वसुर को लगा कि पुत्र वधु किसी से बात कर रही है, इस बात का क्या रहस्य है। उसने पुत्र-वधु से स्पष्टीकरण करने को कहा।

पुत्रवधु एक बार तो चौक उठी, कि मैं तो सोच रही थी कि श्वसुर सो रहे है, पर ये तो जग रहे है। अब बात

को छिपाना ठीक नही है, उसने पिछली सारी घटना सुनादी और चारों वे रत्न भी श्वसुर के सामने रख दिये। दो वृक्षों के बीच गड़े स्वर्ण को निकालकर बताया। श्वसुर उसकी प्रतिभा से प्रभावित हुआ, वह सारा सोना लेकर घर आया। पुत्र को सारी बात बतादी। उसका सन्देह दूर हो गया, सन्देह की मुक्ति ही स्नेह का कारण है।

●

१०

सुयोग्य पुत्र

वसिट्टक पिता का परम भक्त था। उसकी माँ बाल्य-काल मे ही मर चुकी थी। पिता वृद्ध हो गये थे। वह रात दिन पिता की सेवा मे लगा रहता, समय मिलने पर श्रम करके कुछ कमा लाता जिससे दोनो आनन्द से रहते।

एक दिन वृद्ध ने कहा—पुत्र। कमाने और संभालने का कार्य एक साथ नही हो सकता, अत: मैं बहूरानी लाना चाहता हूँ जिससे वह घर संभाल लेगी और तुम अच्छी तरह से कमा सकोगे।

पुत्र ने कहा—पिताजी! आप चिन्ता न करें, मैं यह दोनो कार्य एक साथ कर लूंगा। पर पिता न माना और पुत्र का विवाह एक कन्या के साथ कर दिया। वह रूप मे तो सुन्दर थी, पर स्वभाव उसका अच्छा नही था। वसिट्टक ने घर आते ही उससे कह दिया कि मेरे पिता की सेवा तुम्हे अच्छी तरह करनी है, उनकी सेवा में कमी होने पर ठीक न रहेगा। कुछ दिनों तक तो वह प्रेम से सेवा करती रही, पर कुछ दिनों के बाद

उसने सोचा कि पिता पुत्र मे इस प्रकार मन-मुटाव पैदा कर दू जिससे कि मैं पति के साथ आनन्दपूर्वक रह सकू। वह जानबूझ कर श्वसुर के साथ ऐसा बर्ताव करने लगी कि जिससे वह परेशान हो गया। जब वह कुछ भी कहता तो वह लड़ने के लिए तैयार रहती। वसिट्ठक के साथ इस प्रकार का बर्ताव करती कि वसिट्ठक को ज्ञात होने लगा कि यह निर्दोष है और पिता की ही गलती है।

एक दिन वसिट्ठक ने घर के झगडे से ऊब कर कहा—प्रतिदिन का यह झगडा बहुत बुरा है, पिताजी ज्यो-ज्यो वृद्ध होते जा रहे है न जाने उनका व्यवहार ही कैसा होता जा रहा है। तुम्ही बताओ अब मैं क्या करू।

स्त्री ने नमक मिर्च लगाकर कहा—मुझे क्या पूछते है। जब से इस घर मे आई हूँ तब से एक दिन भी अच्छी तरह नही रही हूँ। अब तो ये इतने अधिक वृद्ध हो गये है, शरीर मे भयंकर रोग भी पैदा हो गए है, जिससे वे यहाँ साक्षात् नरक का उपभोग कर रहे है। उनके कारण घर भी नरक हो गया है। जहाँ चाहते है वहाँ थूक देते है। श्रेष्ठ तो यही है कि इन्हे श्मशान में ले जाकर एक गड्डा बना कर गाड दो, जिससे वे कष्ट भोग रहे है वह भी मिट जायेगा और घर का भी उद्धार हो जायेगा।

वसिट्ठक को पत्नी की बात पसन्द आ गई। उसने कहा बात तो तुम्हारी ठीक है, पर पिता आसानी से

घर छोड़ने के लिए तैयार न होगे। यदि आस-पास के लोग सुनेगे तो इज्जत मिट्टी मे मिल जायेगी।

पत्नी ने कहा—आप ऐसा करे कि कल सुबह ही पिताजी से कहे कि अमुक व्यक्ति रुपये नही दे रहा है, उसने कहा है कि आप जावेगे तो वह रुपये दे देगा, अतः आप गाडी मे बैठकर चलें। इससे पिताजी चलने को तैयार हो जायेंगे और उन्हे श्मशान मे गड्ढा खोदकर गाड देना। और यहाँ आकर हल्ला मचा देना कि रास्ते में डाकू मिले थे वे धन को लूट कर दादा को पकड़ कर न जाने कहाँ ले गये। इससे आपकी प्रतिज्ञा भी बनी रहेगी।

वसिट्ठक ने कहा— वाह, तुम्हारी बुद्धि बडी तीक्ष्ण है, तुमने जैसा कहा है वैसा ही करूँगा।

माता और पिता की इस बात को उसके सात वर्ष के पुत्र ने सुनी। प्रातः जब वह वृद्ध को लेकर जगल मे जाने लगा, तब बालक ने भी हठ की कि मैं भी चलूगा। बालक क्या समझता है यह समझकर उसे साथ ले लिया।

गाडी जब श्मशान मे पहुची तो वसिट्ठक पिता-पुत्र को वही छोडकर स्वयं कुदाल-टोकरी लेकर उतर पड़ा और कुछ दूर पर जाकर गड्ढा खोदने लगा। कुछ समय के पश्चात् बालक घूमता-घामता वही पहुँच गया जहाँ पर पिता गड्ढा खोद रहा था। पिताजी! यहाँ पर आलू शक्करकन्द तो नही है फिर आप गड्ढा क्यो खोद रहे है।

वसिट्ठक ने बालक समझकर लापरवाही से कहा—पुत्र ! तुम्हारे दादा जी बहुत ही वृद्ध हो चुके है। बीमारी में बहुत कष्ट भोग रहे है, उन्हे इसमे गाड़ने के लिए ही गड्ढा खोद रहा हूँ।

बालक ने कहा—पिताजी ! यह तो बहुत ही बुरा कार्य है। दादा जी को जीते-जागते गाड़ देना बहुत बड़ा पाप है।

वसिट्ठक की बुद्धि भ्रष्ट हो रही थी उसने बालक की बात पर ध्यान ही नही दिया। कुछ समय के बाद थककर वह विश्रान्ति के लिए एक ओर बैठ रहा। बालक उठा, उसने कुदाली ली और उस गड्ढे के पास ही दूसरा गड्ढा खोदने लगा।

वसिट्ठक—पुत्र ! क्या कर रहे हो ?

पुत्र—पिताजी जब आप भी वृद्ध होगे तब आपको भी जमीन मे गाढना पडेगा इसलिए अभी से गड्ढा खोदकर रखता हूँ, क्यो कि पिता का अनुसरण पुत्र को करना ही चाहिए। मैं कभी भी आपके द्वारा चलाई गई इस प्रथा को टूटने नही दूगा।

वसिट्ठक ने बिगड़ कर कहा—नालायक कही का पुत्र होकर मेरा अहित करना चाहता है।

बालक—नही पिताजी ! मैं तो आपको महान् पाप से उबारना चाहता हूँ। आप स्वयं सोचिए। यह कैसा राक्षसी कृत्य है।

वसिट्ठक—पुत्र ! मैं अपनी इच्छा से नही, पर तुम्हारी माँ के कहने से यह कार्य करने जा रहा हूँ।

पुत्र—पिताजी ! गलत बात तो मा की भी नही माननी चाहिए। अब भी आपको इस घोर पाप से बचना है।"

पुत्र की बात को सुनकर वसिट्ठक मे गिरते-गिरते सम्भल गया। वह पिता और पुत्र को गाडी बिठाकर पुनः घर की ओर चल पडा। वसिट्ठक की पत्नी उस दिन बहुत ही प्रसन्न थी कि आज घर का पाप टल गया। बढिया भोजन बनाकर वह बैठी ही थी कि बुढे को पुन. गाडी मे आया हुआ देखकर क्रोध से तिलमिला पडी। अरे! तुम तो पुन: इस जिन्दा लाश को घर मे ले आये।

वसिट्ठक ने कहा—तुम पापिन हो, मैं तुम्हारी एक भी बात नही मानूगा, तुम्हे घर मे रहना है तो अच्छी तरह से रहो, वर्ना घर से बाहर निकल जाओ।

इतना सुनते, ही वह घर से निकल गई और पास के दूसरे मकान मे चली गई। उसे आशा थी कि वसिट्ठक उसे मनाने आयेगा, पर आशा निराशा मे परिणत हो गई। दिन पर दिन बीतते गये किन्तु वसिट्ठक नही आया।

एक दिन पुत्र ने सोचा, मा को बहुत शिक्षा मिल चुकी है! पिताजी से क्षमा मांग कर घर पर आ जाय तो अच्छा है। उसने उपाय निकाल लिया। उसने पिता से कहा, आप सुबह जोर से कहिएगा कि मैं दूसरा विवाह करने जा रहा हू, गाडी मे बैठकर रवाना हो जाइएगा, और शाम को पुनः लौट आइएगा। वसिट्ठक ने पुत्र की

बात को मानकर वैसा ही किया। उसकी पत्नी ने यह बात सुनी, सौत की बात से वह सिहर उठी, यदि वह आ गई तो मेरा-भावी जीवन ही बिगड़ जायेगा। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—तुम पिता से कहकर मेरे अपराधों को क्षमा करवा दो, और मुझे पुनः इस घर मे बुलालो भविष्य में मैं कभी भी ऐसा कार्य नही करूंगी।'

पुत्र ने पिता के आने पर कहा—पिताजी। माताजी पुन यहां आना चाहती है। वे अपने अपराध की शुद्ध हृदय से क्षमा मांग रही है, कैसी भी क्यो न हो आखिर तो मेरी मां है।

वसिट्ठक—यदि तुम्हारी इच्छा हो तो बुलाकर ला सकते हो। वह गया, और मां को बुला लाया. उसने पति और श्वसुर से क्षमा याचना की। सुयोग्य पुत्र के कारण पुनः उजडा हुआ घर बस गया। सुयोग्य पुत्र ने जहाँ अपने पिता को पाप के गर्त में गिरते हुए बचाया, वहां अपनी पतित माता का भी उद्धार किया।

●

११

अमर फल

धारा नगरी मे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसने अपनी दरिद्रता को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर किसी मे भी सफलता प्राप्त न हुई। उसने तीन दिन तक अन्न जल ग्रहण किये बिना ही एकाग्रचित्त से देवी की उपासना की। तीसरे दिन देवी ने साक्षात् दर्शन दिये। ब्राह्मण फूला नही समाया उसने देवी से दरिद्रता मिटाने का अनुरोध किया। देवी ने स्पष्ट शब्दो में कहा - भूदेव ! तुम्हारे भाग्य मे सम्पत्ति नही किन्तु विपत्ति लिखी है, किसी का भी सामर्थ्य नही कि उसे कोई भी बदल सके।

ब्राह्मण एकदम निराश और हताश हो गया। उसने दीन स्वर मे कहा—तो क्या मेरी तीन दिन की तपस्या भी व्यर्थ हो जायेगी।

देवी ने साहस बधाते हुए कहा—इतने घबराओ मत, तुम्हारे, भाग्य मे कुछ सफलता भी लिखी है।

ब्राह्मण मे आशा का संचार हो गया। उसने कहा—जो लिखा है वह दीजिए।

देवी ने ब्राह्मण के हाथ में एक फल रखते हुए कहा—यह साधारण फल नही है। यह अमर फल है, इसे खाने पर व्यक्ति सदा के लिए अमर हो जाता है। देवी अन्तर्ध्यान हो गई।

ब्राह्मण को धन चाहिए था, पर धन के स्थान पर अमर फल मिला ! उसने उसे खाने की तैयारी की पर दूसरे ही क्षण उसे विचार आया, यदि अमर फल खाकर अमर बन गया तो जीवन भर दरिद्रता में फंसा दुःख भोगता रहूँगा। इससे तो श्रेष्ठ यही है परोपकारी राजा भर्तृहरि को समर्पित कर दू। जिससे जनता का भी भला होगा, राजा प्रसन्न होकर मुझे धन देगा, जिससे मेरी द्ररिद्रता मिट जायेगी।

उसने उसी समय राज-सभा मे जाकर वह फल राजा को अर्पित किया। भर्तृहरि ने विनोद करते हुए कहा—ब्राह्मण देवता ! मुझे तुम्हे दक्षिणा देकर सम्मान करना चाहिए था, पर आप तो उलटा मुझे उपहार दे रहे है।

ब्राह्मण ने कहा—राजन्। यह साधारण फल नही है। तीन दिन की उपासना व साधना के पश्चात् देवी ने प्रसन्न होकर इसे मुझे दिया है। इसका नाम अमर फल है। ज्यो ही मैं इसे खाने बैठा, त्यो ही मेरे मन मे यह विचार आया कि मैं गरीब हूँ फिर पृथ्वी का भार क्यो बनूं। आपके समान परोपकारी सम्राट् खायेगे तो जनता का भी दीर्घकाल तक कल्याण होगा। अत इसे स्वीकार कर मुझे आप अनुगृहीत करे।

राजा भर्तृहरि ने उस फल को ग्रहण किया और उसके बदले मे ब्राह्मण को भरपूर दक्षिणा देकर उसको आर्थिक संकट से सदा के लिए मुक्त कर दिया। भर्तृहरि महलो मे जाकर ज्यो ही उसे खाने के लिए तत्पर हुए त्यो ही उन्हे विचार आया कि इस फल को खाकर मैं अमर हो जाऊंगा तो मेरी धर्मपत्नी जिसके अभाव में एक क्षण भी मुझे अच्छा नही लगता है! यदि वह नही रही तो मेरा लम्बा जीवन भी नीरस हो जायेगा। अत इसे मैं अपनी प्रियरानी को अर्पित कर दूं जिससे वह दीर्घकाल तक जी सके।

भर्तृहरि को अपने जीवन की अपेक्षा रानी का जीवन अधिक मूल्यवान प्रतीत हुआ। वह फल लेकर रानी पिंगला के पास पहुंचा। और अपने हृदय के अपार अनुराग को प्रदर्शित करता हुआ वह फल रानी को प्रदान किया। रानी फल को पाकर फूली न समाई। राजा राज सभा मे चला गया। रानी अन्य व्यक्ति मे अनुरक्त थी। उसने सोचा अमर फल खाकर मे अमर बन जाऊंगी, पर मेरा प्रेमी हस्तिपालक यो ही रह जायेगा। रानी को अपने जीवन की अपेक्षा हस्तिपालक का जीवन अधिक महत्वपूर्ण लगा। उसने उसी समय हस्तिपालक को बुलाया और अपने स्नेह को दर्शाती हुई वह फल उसे भेंट किया। हस्तिपालक बहुत ही प्रसन्न हुआ। और उस फल को लेकर अपने घर आ गया।

हस्तिपालक के आसक्ति का केन्द्र रानी नही किन्तु

वहां की प्रसिद्ध गणिका थी। वह रानी से भी अधिक महत्व उसे देता था। उसने अमर फल गणिका को देने का निश्चय किया। वह उस फल को लेकर गणिका के यहाँ गया और मनोविनोद करते हुए उसने अमर फल गणिका को उपहृत किया। दैविक फल को पाकर गणिका की प्रसन्नता का पार न रहा।

अमर फल को पाकर गणिका चिन्तन करने लगी कि मेरा जीवन कितना अधम है मेरे कारण कितनो का पतन हुआ है। यदि मैं अमर बन गई तो हजारो व्यक्ति वासना के कर्दम मे गिरकर अपने जीवन को बर्बाद करेंगे। इसलिए यही श्रेयस्कर है महान् परोपकारी सम्राट् भर्तृहरि को यह फल भेंटकर दूं जिससे वे दीर्घकाल तक वह प्रजा का प्रेम से पालन करते रहे।

गणिका दूसरे दिन राज सभा मैं फल को लेकर उपस्थित हुई। उसने ससम्मान वह अमर फल राजा को भेंट किया। राजा ने फल को देखते ही पहचान लिया। परन्तु मन मे प्रश्न कौध गया कि पिंगला रानी को दिया गया यह फल गणिका के पास कैसे पहुँच गया। भर्तृहरि ने अनजान बनकर गणिका से पूछा—यह देवनामी श्रेष्ठ फल तुम्हारे पास किस प्रकार आया।

गणिका ने सहज भाव से कह दिया आपका जो हस्तिपालक है वह मेरा प्रेमी है, उसने यह अमूल्य उपहार मुझे दिया है। राजा ने पुरस्कार देकर गणिका को विदा किया।

राजा ने अपने विश्वस्त अनुचर के द्वारा एकान्त में हस्तिपालक को बुलाया और अमर फल के सम्बन्ध मे पूछा, हस्तिपालक के तो भय से रोंगटे खड़े हो गए। मृत्यु के भय से उसने सारी बात राजा के सामने स्पष्ट रूप से रख दी। उसे सुनते ही भर्तृहरि की आखे खुल गई। उनके मुंह से सहसा निकल गया—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोन्यसक्तः
अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तंच मदनं च इमां च मां च ?

जिस पिंगला को मै अपनी अनन्या समझता था अरे जिसके पीछे—दीवाना बना हुआ था, वह तो अन्य मे आसक्त है, वह जिसे अपना समझती थी उसके हृदय में दूसरी का ही निवास था। धिक्कार है मुझे, पटरानी पिंगला को, हस्तिपालक और इस गणिका को। सबसे बढकर धिक्कार है मुझे जो विषयो मे आसक्त हो रहा हूँ।

प्रस्तुत घटना ने राजा भर्तृहरि को संसार से विरक्त कर दिया। वे राज्य का परित्याग कर गिरि कंदराओ में पहुंचकर साधना करने लगे। उनकी जीवन गाथा आज भी भारतीय जन मानस मे वैराग्य की निर्मल ज्योति जगाती है।

●

१२

समस्या का समाधान

एक युवक था, जिसका जीवन सत्य निष्ठ व परोपकारी था। किन्तु उसके पास सम्पत्ति का अभाव था। वह घर मे अकेला था, उसे अकेलेपन का अभाव सदा खटकता था। एक दिन उसने कुलदेवी की उपासना कर गरीबी और अकेलेपन को मिटाने के लिए प्रार्थना की। कुलदेवी युवक की सत्यनिष्ठा परोपकार कर्तव्य परायणता पर मुग्ध हो गई। उसने कहा–पुत्र, तेरी समस्याओ का समाधान एक ज्ञानी पुरुष करेगा जो यहा से चार योजन दूर उत्तर दिशा मे रहता है तू उसके पास चला जा।

आशा से लगा हुआ युवक वहां से उसी दिशा मे चल दिया। वह इतना गरीब था कि वाहन के लिए उसके पास पैसे नही थे, और चलने का भी अभ्यास नही था। तथापि साहस से वह चल दिया एक योजन भी वह कठिनता से चल सका। इतना थक गया था कि एक कदम भी अब वह नही चल सकता था, छोटे से गाँव मे एक बुढ़िया की झौपडी पर विश्राम लेने के लिए पहुचा। वृद्धा ने प्रेम से उसका सत्कार किया।

उसके एक रूपवान कन्या भी थी युवक स्नान और भोजन से निवृत्त होकर बुढिया के पास बैठा। घर बीती और आप बीती अनेक बाते चलती रही, अन्त में वृद्धा ने युवक से पूछा—तुम्हारी यात्रा का उद्देश्य क्या है! युवक ने कहा—मेरी कुछ व्यक्तिगत समस्यायें है, कुल-देवी के कहने से मैं उनका समाधान करने के लिए ज्ञानी पुरुष के चरणो मे जा रहा हूँ।

वृद्धा के मुह पर प्रसन्नता की रेखा चमक उठी, उसने कहा—पुत्र! मेरी भी एक समस्या है, जिसमे मैं काफी उलझी हुई हूं, तुम मेरी समस्या का समाधान ज्ञानी पुरुष से करना—मेरी यह पुत्री है, जो विवाह योग्य हो गई है। जब मैंने इसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा तब इसने मुझे अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा बताते हुए कहा —मैं उसी पुरुष के साथ विवाह करूँगी, जो सवा करोड की कीमत का बहुमूल्य हीरा लाकर मुझे देगा। मैंने अनेक प्रकार से इसे समझाया पर यह अपनी हठ छोडती ही नही है, तो तू उस ज्ञानी से पूछना कि इसकी प्रतिज्ञा कब पूर्ण होगी।

युवक वृद्धा को आश्वासन देकर दूसरे दिन आगे बढा। उस दिन भी वह एक योजन से अधिक न चल सका। विश्रान्ति के लिए उसने इधर-उधर देखा, पर आस-पास मे कही भी गांव नही था, जंगल मे एक झौपडी थी, युवक उसी झौपड़ी मे पहुँचा, वहाँ एक सन्यासी जप तप कर रहा था, युवक ने रात्रि मे वहाँ रहने की अनुमति माँगी। सन्यासी ने प्रसन्नता से कहा—आप

निःसकोच यहाँ रह सकते है। सन्यासी के साथ युवक की बातें होती रही अन्त में सन्यासी ने कहा—तुम ज्ञानी पुरुष के पास जा रहे हो तो मेरी भी एक समस्या है उसका समाधान करके लाना। वह समस्या यह है कि मुझे बारह वर्ष से अधिक समय हो गया है साधना करते, किन्तु अभी तक मेरा मन एकाग्र नही हो पाया है। मेरा मन अत्यधिक बेचैन रहता है।

युवक ने सन्यासी को आश्वासन देकर आगे प्रस्थान किया। एक योजन चलने पर वह थक गया, उसने उस दिन एक माली के बगीचे मे विश्राम लिया। माली ने भी उसके सामने अपनी समस्या रखते हुए कहा--मेरे पिता जब मरणासन्न स्थिति मे थे तब उन्होने मुझे आदेश दिया था कि मकान के उत्तर के कोने मे चम्पा का वृक्ष लगाना, यह कह कर उन्होने आँखें मूंद ली, मैंने उनके बताए हुये स्थान पर चम्पा का वृक्ष लगाने का अत्यधिक श्रम किया पर वहाँ वृक्ष न लग सका। मेरे हृदय में यह असह्य पीडा सता रही है कि मैं पिता की यह छोटी सी इच्छा भी पूर्ण न कर सका। उस ज्ञानी पूरुष से पूछकर मेरी पहेली को सुलझाने का प्रयास करें।

युवक माली को आश्वासन देकर प्रात काल वहाँ से आगे बढा। एक योजन जाने पर उसे उस ज्ञानी की झौपडी मिल गई। उसके मुँह पर अद्‌भुत आभा चमक रही थी। युवक प्रथम दर्शन मे ही उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसका श्रद्धा से उसके चरणों मे सिर झुक

गया। उस ज्ञानी ने आशीर्वाद प्रदान करने के पश्चात् आने का कारण पूछा—नवयुवक ने कहा—आप महान् है। आपके दिव्य ज्ञान की प्रशसा स्वय कुलदेवी ने की है, कि आपके पास जो भी व्यक्ति जटिल से जटिल समस्या लेकर आता है वह समाधान पाकर प्रसन्नतापूर्वक लौटता है। मेरी भी अनेक समस्यायें हैं, मैं उन समस्याओ के समाधान की आशा लेकर आया हूँ।

ज्ञानी पुरुष ने कुछ क्षणो तक युवक को पैनी दृष्टि से देखा, फिर कहा—तुम्हारे कितने प्रश्न हैं? मैं सिर्फ तीन प्रश्नो से अधिक प्रश्नो का उत्तर नही दू गा।

नवयुवक कुछ झिझका। तथापि साहस बटोर कर उसने कहा—भगवन्! मुझे आपसे चार प्रश्न ही पूछने है। एक मेरा स्वय का है और तीन प्रश्न अन्य व्यक्तियो के है जिनका मार्ग मे मैंने आतिथ्य ग्रहण किया था। आप मुझ पर विशेष अनुग्रह कर चारो प्रश्नों का समाधान प्रदान करें। यदि एक भी प्रश्न अधूरा रहा तो मैं कठिनाई मे फस जाऊंगा।

ज्ञानी पुरुष ने दृढ़ता के साथ कहा— मैं तीन से अधिक प्रश्नो का उत्तर नही दू गा। यदि तुमने अधिक लोभ किया तो हानि की संभावना है।

नवयुवक चिन्तित हो गया, युवक को अपनी समस्या भी परेशान कर रही थी, साथ ही तीनो को दिया गया वचन भी वह निभाना चाहता थी। वह अपनी समस्या की तरह उनकी भी समस्या का समाधान चाहता था।

कुछ क्षणो तक चिन्तन के पश्चात् उसने यह निर्णय लिया कि मैं अपनी समस्या छोड़ सकता हूँ, पर उनकी नही। उसने ज्ञानी के सामने तीनो की समस्याए रखी, ज्ञानी ने समाधान दिया। नवयुवक वहा से लौट गया एक योजन मार्ग पार करने पर वह माली के घर पहुंचा। माली ने प्रेम से उसे बिठाया। नवयुवक ने कहा—मैं आपकी समस्या का सही समाधान कर के लाया हूँ। उस ज्ञानी पुरुष ने मुझे बताया कि तुम्हारा पिता बहुत ही चतुर था, जब वह मृत्यु शैय्या पर पडा हुआ था, उस समय अनेक लोग आस-पास बैठे थे, वह तुम्हारे से गुप्त बात करना चाहता था, पर लोगो के भीड़-भडक्के मे वह न कह सका, उसने तुम्हारे को सकेत मे कहा—चम्पक वृक्ष जहा लगाने के लिए कहा उस स्थान पर बहुत सा धन गडा हुआ है, तुम केवल ऊपर से खोदते हो। उतनी मिट्टी में वृक्ष लग नही सकता जड़े गहराई मे जा नही सकती, आप जरा गहरा खोदे आपको पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त होगा। माली ने ज्यो ही खुदाई की त्योही दस-दस सहस्र स्वर्ण मुद्राओ से भरे हुए चार कलश निकले। माली के हर्ष का पार न रहा।

नवयुवक की ओर मुड़कर माली ने कहा—आपने मुझे धन दिखाकर मेरे पर महान् उपकार किया है, यदि आप यहां पर नही आते तो मुझे यह कोप प्राप्त नही हो सकता था, आप इस धन को ले जाइए, पर युवक उस धन पर तनिक मात्र भी नही ललचाया। किन्तु माली के

अत्यधिक आग्रह पर युवक को बीस हजार मुद्राएं लेनी ही पड़ी।

एक दिन रुक कर युवक आगे बढा बीस हजार मुद्राएं उसके साथ ही थी। एक योजन मार्ग पार करने पर उसे सन्यासी की कुटिया मिली। सन्यासी ने आते ही पूछा—बताओ मेरी समस्या का क्या समाधान लाये।

युवक ने कहा - सन्यासी बनने के पूर्व आप राजा थे, आपने सन्यास तो ग्रहण किया पर मन मे यह सशय बना रहा कि भविष्य मे क्या होगा, इस दृष्टि से सवा करोड़ का कीमती हीरा अपने पास छुपा रखा है, उस हीरे के कारण आपकी साधना में एकाग्रता नही आ पाती है।

सन्यासी ने सुना, अध्यात्म की भूख उसमें तीव्र लगी हुई थी। हीरे की ममता छूट गई। उसने उसी समय हीरे को निकाल कर उसे दे दिया। और स्वय ध्यान मे दत्तचित्त हो गया। युवक आगे बढा और तीसरे दिन बुढिया के घर पर पहुंचा। बुढिया उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। बेटा! ज्ञानी पुरुष से मेरी पुत्री के सम्बन्ध में पूछा क्या ?

युवक ने कहा—मां तुम्हारी बात को मैं किस प्रकार विस्मृत कर सकता था। ज्ञानी पुरुष के संकेतानुसार तुम्हारा मनोरथ अभी पूर्ण हो जायेगा, अपनी पुत्री को शीघ्र ही यहां बुला लाओ। बुढिया ने शीघ्र पुत्री को बुलाया। युवक ने सवा करोड़ की कीमत का चमचमाता हीरा उसके हाथ पर रखा। वह उस बेशकीमती हीरे को पहचान गई वह

उसी समय उसके चरणो में अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार समर्पित हो गई। बुढिया ने उसका विवाह कर दिया। युवक धन और पत्नी को लेकर अपने घर पहुँच गया। युवक की गरीबी ओर अकेला पन सदा के लिए समाप्त हो गया। उसने ज्ञानी पुरुष के सामने भले ही अपनी समस्या नही रखी पर, अन्य तीन व्यक्तियो की समस्या को उसने प्रमुखता दी, जिससे उसकी समस्या का भी समाधान हो गया।

●

१३

अनमोल जीवन : कौड़ी का मोल

एक राजा प्रातःकाल जंगल मे घूमने के लिये गया। वह रास्ता भूल गया। उसे भूख प्यास सताने लगी। वह एक अरण्यवासी की झौपडी पर जा पहुँचा, भील ने उसका हृदय से स्वागत किया, राजा प्रसन्न हो गया।

विदा होते समय राजा ने कहा—मैं तुम्हारी सज्जनता मानवतापूर्ण सद्व्यवहार से प्रभावित हूँ। मैं अपना चन्दनबाग तुम्हे अर्पित करता हूँ जिससे तुम्हारा जीवन आनन्दमय व्यतीत होगा।

वनवासी चन्दनवन को प्राप्त कर प्रसन्न हो गया, किन्तु चन्दन का क्या महत्त्व है, उससे किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, उसका उसे ज्ञान नही था। वनवासी ने सोचा इसके कोयले बनाकर शहर में वेचे जाये जिससे अच्छा लाभ होगा। वह चन्दन की लकड़ी के कोयले वनाकर वेचने लगा, और किसी भी प्रकार से अपना गुजारा करने लगा।

एक-एक करके सारे वृक्ष समाप्त हो गये। एक पेड़ वच गया। वर्षा का समय था, उससे कोयला न वन

सका, उसने गुजारे के लिए लकड़ी को बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठा लेकर वह एक सेठ के यहाँ पहुँचा, सेठ बड़ा ही भला था, उसने वनवासी को कहा —यह लकड़ी साधारण नही बढ़िया चन्दन की है। उसने उसके बदले में काफी धन दिया। और कहा कि तुम्हारे पास और भी इस प्रकार की लकड़ी हो तो वह लेते आना।

वनवासी अपनी ना समझी पर पश्चाताप करने लगा। उसने बहुमूल्य चन्दनवन को अत्यधिक कम कीमत में कोयला बनाकर बेच दिया था। एक समझदार व्यक्ति ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—मित्र ! अब आँखो से आँसू बहाकर पश्चाताप न करो सारा संसार ही तुम्हारी तरह ही है। जीवन के अनमोल क्षण चन्दन की लकड़ी के समान बहुमूल्य है पर विकार और वासना के कोयले बनाकर उसे बर्बाद कर रहे है। तुम्हारे पास एक वृक्ष बचा है उसका सद्उपयोग करो, तुम नौनिहाल हो जाओगे।

१४

क्या मानव जीवन गरीब है ?

एक युवक महात्मा टाल्सटाय के पास पहुँचा। उसने उनसे निवेदन किया कि वह अत्यधिक गरीब है। उसके पास एक पैसा भी नही है जिससे वह बहुत ही दुःखी है।

टाल्सटाय ने पैनी दृष्टि से युवक को देखते हुए कहा —क्या तुम्हारे पास कुछ भी सम्पत्ति नही है ?

युवक ने निराश होते हुए कहा—बिल्कुल नही है।

टाल्सटाय ने कहा—मैं एक ऐसे व्यापारी को जानता हूँ। जो मानव के नेत्र खरीदता है। दोनों नेत्र के वह बीस हजार रुपये देगा, क्या तुम उनको बेचोगे ?

युवक ने कहा—नही, बिल्कुल नही। मैं कभी भी अपनी आँखें बेच नही सकता।

वह हाथ भी खरीदता है, दोनो हाथो के वह पन्द्रह हजार देगा, हाथ तो बेचोगे न !

इन हाथो को भी कभी बेच नही सकता।

अच्छा, वह पैर भी खरीदता है, दोनों पैरों के दस

हजार देगा, इनको बेच दो, तुम्हारी गरीबी दूर हो जायेगी।

युवक भयभीत होगया, उसने कहा—आप यह क्या कह रहे है।

मैं तुम्हारे को अच्छी सलाह दे रहा हूँ। तुम अधिक अमीर बनना चाहते हो तो एक लाख में तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर को भी ले सकता है। वह व्यापारी मनुष्य के शरीर से कुछ विशिष्ट औषधियाँ बनाता है, तुम्हारे को प्रसन्नता से इतना मूल्य दे देगा।

टालसटाय ने मुस्कराते हुए कहा—युवक को सम्बोधित करते हुये कहा—तुम्हारे पास लाखों की कीमत का शरीर है, फिर भी तुम अपने आपको दरिद्र मानते हो, कितनी अटपटी बात है। इस सम्पत्ति के अक्षय कोष से तुम जो चाहो वह कार्य कर सकते हो, अपने आपको दरिद्र मानना भयंकर भूल है।

१५

आदर्श भावना

बंगाल में वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार और विस्तार करने का श्रेय श्री चैतन्य को है।

वे एक दिन गाँव को जा रहे थे, मार्ग में एक बहुत बड़ी नदी थी, जो बिना नौका के पार नही की जा सकती थी। अन्य यात्रियो के साथ चैतन्य भी नौका मे बैठ गये, और नदी की निर्मल धाराओ को देखने लगे।

उसी समय एक व्यक्ति ने उनको झकझोरते हुए कहा—चैतन्य क्या तुमने मुझे नही पहचाना, मैं तुम्हारा बाल—मित्र गदाधर हूँ। आज बहुत वर्षों के पश्चात् आपके दर्शन हुए है।

चैतन्य—मित्र गदाधर! मैं प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा को निहार रहा था अतः मैंने तुम्हारी ओर ध्यान नही दिया।

दोनो मित्रो में स्नेहपूर्वक वार्तालाप प्रारंभ हुआ। अतीत की धुंधली स्मृतियां उद्‌बुध्य होने लगी।

गदाधर ने कहा—मित्र! तुम्हें स्मरण है न। जब हम गुरुकुल मे पढते थे उस समय हम दोनो ने यह प्रतिज्ञा

ग्रहण की थी कि हम अध्ययन पूर्ण होने पर न्याय शास्त्र पर ग्रन्थ लिखेंगे। क्या वह तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई, या तुम्हारी स्मृति में ही वह बात नही रही।

चैतन्य—मित्र ! मैं उस प्रतिज्ञा को नही भूला, मैंने न्यायशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिख दिया है। वह ग्रन्थ आज मैं अपने साथ ही लेकर आया हूँ, तुम उसे देखलो और उसका भाषा आदि की दृष्टि से जो भी परिष्कार करना चाहो, सहर्ष कर दो।

गदाधर ने मोती के समान चमचमाते हुए सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए ग्रन्थ के दो चार पृष्ठ उलटे कि सहसा उसका मुख कमल मुरझा गया ! उसने ग्रन्थ को नीचे रख दिया।

चैतन्य—मित्र ! क्या बात है ! क्या ग्रन्थ अशुद्ध है ? या इसमें त्रुटियां रह गई हैं ? तुम्हारा चेहरा इसे देखकर म्लान क्यो हो गया। तुम्हे स्मरण है न। विद्यार्थी जीवन मे तुम मेरे से कभी भी कोई भी बात छिपा कर नही रखते थे। जो भी होता उसे साफ-साफ मुझे बता देते थे, पर आज अपने हृदय के उद्गारो को क्यो छिपा रहे हो।

गदाधर की आँखें आंसुओ से गीली हो गई। उसने रुंधे कंठ से कहा—मित्र मैं अधम ही नही, महा अधम हूँ। मुझे अपने प्यारे मित्र की शानदार कृति को देखकर प्रसन्न होना चाहिए था, और तुम्हे इसके लिए बधाई देनी चाहिए थी पर मैं वैसा नही कर सका, उसका कारण है कि मैंने भी न्यायशास्त्र पर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार एक ग्रन्थ

लिखा है, मैं सोच रहा था कि विद्वद्वर्ग मेरे ग्रन्थ को मान्य करेगा, उसकी मुक्त कंठ से प्रशसा करेगा परन्तु तुम्हारे ग्रन्थ को देखकर मेरी आशा पर पानी फिर गया। तुम्हारे ग्रन्थ मे भाषा का लालित्य है, भावो की सुन्दर और सरस अभिव्यक्ति है और शैली की प्रौढ़ता है। तुम्हारा ग्रन्थ सूर्य के समान है तो मेरा ग्रन्थ नन्हे दीपक के समान है। तुम्हारे इस ग्रन्थ को एक बार विद्वान् देख लेंगे, तो मेरे ग्रन्थ को कोई भी विद्वान् पसन्द नही करेगा।" इसी अधम-भावना के कारण ही मेरा चेहरा म्लान हो गया है।

चैतन्य—मित्र ! तुम चिन्ता न करो, मेरा ग्रन्थ तुम्हारी कीर्ति मे बाधक नही बनेगा। जिस ग्रन्थ से मित्र के हृदय को कष्ट हो, वह ग्रन्थ ही किस कामका ? लो, मैं तुम्हारे सामने ही इस ग्रन्थ को सरिता की सरस धारा मे बहा देता हूँ।

गदाधर चैतन्य का हाथ पकडने के लिए आगे बढता है। तब तक ग्रन्थ नदी मे डूब जाता है।

गदाधर ने कहा—मित्र तुमने यह क्या कर दिया तुमने इस प्रकार की अनमोल कृति को मित्र के लिए पानी मे डुबा कर नष्ट कर दिया। तुम्हारे त्याग की अमर कहानी इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर चमकेगी और मेरी अधम मनोवृत्ति पर लोग थूकेंगे।

चैतन्य—मित्र ! तुम प्रसन्न रहो तुम्हारी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है। हम दोनों एक ही गुरु के शिष्य है। तुम्हारा नाम ही मेरा नाम है, अब तुम्हारी पुस्तक का

अध्ययन करने पर ही न्याय शास्त्र का अध्ययन पूर्ण समझा जायेगा।

नौका नदी के किनारे जाकर खड़ी हो गई। दोनो नौका से उतर पड़े। दोनो के मुख कमल खिले हुए थे। दोनो को आत्म-सन्तोष था।

●

१६

आनन्द कहां !

एक सेठ विदेश से धन कमाकर अपने घर की ओर आ रहा था, मार्ग मे उसे एक ठग मिला, उसने सेठ से प्रश्न किया, आप कहां जा रहे है। उत्तर मे—सेठ ने कहा—मैं धन कमाने के लिए विदेश गया था, वहा पर बारह वर्ष रहा और जितना भाग्य मे लिखा था उतना धन कमाकर घर लौट रहा हूँ।

धन की बात सुनकर ठग के मुंह मे पानी आ गया, उसने सोचा, किसी उपाय से सेठ के पास के धन को ले लेना चाहिए, फिर ऐसा सुनहरा अवसर हाथ न लगेगा।

ठग ने मधुर शब्दो मे सेठ से कहा—बन्धुवर। आप जिस ग्राम को जा रहे हो उससे दस मील आगे ही मेरा गांव है, मैं भी वही जा रहा हूँ। तुम्हारा साथ मिल गया, बडी प्रसन्नता है। वार्तालाप करते हुए मार्ग आसानी से कट जायेगा। सेठ भी यही चाहता था कि रास्ते में कोई साथी मिल जाय तो अच्छा है मीठी बाते करते हुए दोनों आगे बढ़ रहे थे।

सूर्य अस्ताचल की ओर तेजी से बढ़ रहा था। ठग

ने कहा—संध्या होने जा रही है अब आगे बढ़ना उचित नही है। इसी पास की धर्मशाला मे हम ठहर जाये तो कितना अच्छा रहेगा, यह धर्मशाला हर दृष्टि से सुरक्षित है।

सेठ ने ठग के प्रस्ताव का समर्थन किया, और वे दोनों उसी धर्मशाला में खा पीकर सो गये। ठग ने विचारा कि कही सेठ को मेरी नियत पर सन्देह न हो जाय एतदर्थ वह निद्रा का नाटक करने लगा।

सेठ को ज्यो ही गहरी निद्रा आई त्योंही वह उठ बैठा। धीरे से सेठ के विस्तर व जेब को टटोलने लगा। पर उसे एक भी पैसा प्राप्त नही हुआ, उसकी सभी आशा निराशा में परिणित हो गई, मुंह लटकाये, करवटे बदलते हुए वह भी सो गया।

उषा की सुनहरी किरणे ही मुस्कराने लगी त्योही वे दोनो अपने लक्ष्य की ओर आगे बढे। वार्तालाप करते हुए ठग ने कहा – बन्धुवर! तुम बारह वर्ष तक विदेश में रहे हो, वहां से कुछ कमाकर घर लौट रहे हो, या यो ही खाली हाथ लौट रहे हो ?

सेठ—मित्र! जितना भाग्य में होता है उतना ही तो मिलता है, मैंने वहां केवल भाड ही नही झोका है, कुछ कमाया भी है, जिसे लेकर मैं अपने बाल बच्चो से मिलने जा रहा हूँ।

धन की बात को सुनकर ठग के चेहरे पर प्रसन्नता की

रेखाएं चमक उठी। सेठ के सामान मे कही न कही धन अवश्य है। संध्या होते-होते वे दूसरी अगली धर्मशाला जा ठहरे। पहले दिन की भाँति ही ठग निद्रा का नाटक कर सो गया। जब सेठ को गहरी निद्रा आई तब वह उठा और बडी ही सावधानी से उसने सेठ की जेबें, विस्तर, व सामान टटोलना प्रारंभ किया, जब घटों तक मेहनत करने पर भी उसे कुछ नही मिला तो उसे विश्वास हो गया कि सेठ के पास कुछ भी सम्पत्ति नही है, केवल मुझे धोखा देने के लिए अपनी बढाई बघारता है। मैं इस धूर्त के साथ कैसे फंस गया।

तीसरे दिन कुछ चले ही थे कि सेठ का गाव आ गया ठग को लेकर अपने घर पहुँचा, भोजन आदि से निवृत्त होने पर उसने अपने साथ का बिस्तर खोला, बिस्तर मे से एक गठडी निकाली जिसमे पांच हजार स्वर्ण मुद्राएं थी। पांच मुद्राए उसको देते हुए कहा—अभी तुम्हारा गाँव दूर है, खाने का सामान ले लेना ओर साथ ही अपने बाल-बच्चो के लिए भी कुछ वस्तुएं खरीद लेना।

ठग निर्निमेष दृष्टि से उस गठरी को देखने लगा, उसे विश्वास ही नही हो रहा था कि यह क्या हो गया, जिस गठरी को मैं दो रात से ढूढता रहा, मुझे नही मिली, आज यह कहां से आ गई ?

ठग—सेठजी ! आप मुझे नही पहचानते है कि मैं कौन हूँ। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि दूसरो के धन का अपहरण करना ही मेरा एक मात्र व्यवसाय है। आपके

साथ इसी कारण से आया था, मैंने दो रात तक इस गठरी को ढूढा, पर वह मुझे कही भी उपलब्ध नही हुई। अब आप अपने घर आ गये है, अतः आपको अब कोई खतरा भी नही है, कृपया बताइये इसे आप रात मे कहां रखते थे।

सेठ ने मुस्कराते हुए कहा—इस रहस्य का उद्घाटन मैं तभी करूंगा जब आप यह प्रतिज्ञा ग्रहण करे कि मैं भविष्य मे किसी के धन का अपहरण नही करूंगा।

ठग ने जब प्रतिज्ञा ग्रहण की तब सेठ ने कहा—प्रथम दर्शन में ही मुझे यह अनुभव हो गया था कि आप किस प्रकार के व्यक्ति हैं। मैंने सोचा—तुम रात भर मेरी सारी वस्तुएं संभालोगे, किन्तु अपनी वस्तुएं नही देखोगे धन की अन्वेषणा के लिए रात भर जागते रहोगे अतः दूसरा कोई चोर भी नही आ सकेगा, इसलिए मै यह धन की गठरी जब तुम इधर-उधर पेशाब आदि के लिए जाते तो मैं धीरे से तुम्हारे सिरहाने के नीचे रख देता था। रात मे यह पोटली तुम्हारे पास ही रही थी, पर तुम्हारा ध्यान उधर गया ही नही।

ठग के आंखों में आँसू आ गये, हाय जो धन मेरे ही पास था उसे मैंने तुम्हारे पास ढूँढा।

आज का मानव भी उस ठग की भांति भौतिक पदार्थों में सुख की अन्वेषणा कर रहा है पर वह आनन्द बाहर नही अपने अन्दर ही है।

१७ | कलाकार की आलोचना

एक कलाकार मूर्तिकला मे निपुण था। उसके यथार्थवादी चित्रण को निहार कर दर्शक आश्चर्य चकित हो जाता था। वह अपने युग का सर्वश्रेष्ठ कलाकार था। वह जवानी को पार कर बुढ़ापे मे प्रविष्ट हो रहा था। उसकी बढती हुई वृद्धावस्था को देखकर उसके स्नेहीजनो को चिन्ता सताने लगी। उन्होने अपने हृदय की व्यथा कलाकार के सामने प्रस्तुत की।

कलाकार ने कहा—आप क्यो चिन्ता कर रहे हैं!

उन स्नेहीजनो ने कहा—यमराज जब आता है तो वह न कलाकार को देखता है और न साहित्यकार को ही। नेता और अभिनेता का भी वह भेद नही करता है। उसकी स्मृति मात्र से ही सिहरन होने लगती है।

कलाकार खिलखिला कर हस पड़ा, उसने कहा—मैं अपनी कला कौशल से यमराज को भी चकमा दे सकता हूँ। वह मुझे सुगमता से नही ले जा पायेगा।

लोगों ने प्रश्न किया—वह किस प्रकार हो सकता है।

कलाकार ने सगर्व कहा—मै अपनी दस मूर्तियां बनाऊंगा, और जब यमराज आयेगा, तो मैं झट से उन मूर्तियों के बीच छिप जाऊँगा। वह यथार्थ और मूर्ति का भेद नही कर सकेगा और मेरा बाल भी बांका नही होगा।

लोगो को विश्वास नही हुआ परन्तु कलाकार को पूर्ण विश्वास था कि उसकी कला कभी भी निरर्थक नही हो सकेगी। वह मूर्ति-निर्माण मे जुट गया। उसने दस मूर्तियाँ बनाई। और एक नूतन कक्ष मे उन्हे स्थापित कर दी और स्वयं उसमें जा बैठा। दर्शक यह भेद नही कर सके कि मूर्तियां कौन है और कलाकार कौन है।

कलाकार अपनी बुद्धि-कौशल पर फूला नही समा रहा था। एक दिन वह मूर्तियो के बीच में बैठा हुआ था कि यमराज आ गया। कलाकार ने यमराज को पहचान लिया। कलाकार निस्तब्ध बैठा रहा लम्बे समय तक गहराई से देखने पर भी यमराज पहचान न सका कि कलाकार कौन है और मूर्ति कौन है। यमराज ने बुद्धिमता से काम लिया। उसने कहा—कैसा मूर्ख कलाकार है जो इन सभी मूर्तियों को भी एक सदृश नही बना सका। किसी की नाक सीधी है, किसी की टेढी है. किसी की मोटी हैं तो किसी की पतली है।

कलाकार ने ज्यो ही अपनी कटु आलोचना सुनी त्योही वह वही बैठा चीख उठा कि मेरी कला को कौन

चुनौती देता है। यमराज ने उसका गला दबोचते हुए कहा—मैं जानता था कि असली कलाकार अपनी कला की आलोचना कभी सुन नही सकता। इसी दृष्टि से मेरा यह उपक्रम था। अच्छा चलो अब मेरे साथ।

कलाकार अब क्या करता, उसे उसके साथ जाना ही पडा।

●

१८

बादशाह की रामायण

प्रातःकाल का समय था। एक बादशाह अपने वजीर के साथ घूमने के लिए जा रहा था। मार्ग में एक व्यास जी कथा कर रहे थे। हजारो लोग बैठे हुए कथा का आनन्द ले रहे थे। व्यास जी के कथा कहने का ढंग इतना निराला था कि बात-बात में हंसी के फव्वारे छूट रहे थे, लोग प्रसन्नता से झूम रहे थे।

बादशाह ने पूछा—वजीर जी ! यहां पर कथा किसकी हो रही है ?

वजीर—जहाँपनाह ! अयोध्या के राजा राम और सीता की कथा कही जा रही है।

बादशाह को बहुत ही बुरा लगा कि मेरे राज्य में मेरी कथा न करके लोग दूसरो की कथा करते हैं।

बादशाह ने, उसी समय व्यास जी को बुलाया और कहा देखना अब से राजाराम की कथा न सुनाकर मेरी कथा सुनाया करो। जैसी सीता राम की कथा है वैसी हूबहू मेरी भी कथा लिख दो।

व्यास पूरा घाघ था। उसने कहा—जहांपनाह! मैं ऐसी बढ़िया कथा लिख दूंगा कि लोग रामायण को पढना भूल जायेंगे। पर इसके पारिश्रमिक के रूप में मुझे ग्यारह हजार रुपये चाहिए।

बादशाह ने उसी समय रुपये उसे राजकोष से दिलवा दिये।

व्यास, पांच महिने के पश्चात् बादशाह के पास पहुँचा और कहा—जहाँपनाह! रामायण की तरह ही बादशायण मैंने तैयार कर दी है किन्तु उसमे केवल एक खास बात लिखनी रह गई है कि राम की पत्नी सीता को रावण चुराकर ले गया था, कृपया बतायें कि उस आशिक का नाम क्या था ताकि बादशायण मे लिख सकू।

बादशाह ने सुना और घबराकर कहा - मुझे ऐसी रामायण नही चाहिए।

१६

परीक्षा

अनिलकान्त उज्जैनी का एक बुद्धिमान और सुप्रतिष्ठित सेठ था। घर मे धन के अम्बार लगे हुए थे। पत्नी प्रतिभा भी उसी के समान बुद्धिमती थी। किन्तु प्रतिभा की गोद सूनी होने से वह सदा उदास रहती थी।

अनिलकान्त उसे समझाता कि तुम रात दिन चिन्ता न किया करो, यदि भाग्य मे लिखा है तो पुत्र अवश्य होगा।

प्रतिभा—नाथ ! बिना पुत्र के यह विराट् वैभव किस काम का ?

अनिलकान्त—तू आसू न बहा ! आज ही मुझे एक पहुंचे हुए सन्त ने बताया है कि तुम्हारे एक पुत्र होगा।

उसी रात प्रात काल प्रतिभा को स्वप्न आया कि एक गंभीर गर्जना करते हुआ सिह ने उसके मुंख मे प्रवेश किया।

प्रतिभा समझ गई कि अब मेरे एक तेजस्वी पुत्र रत्न होगा। अनिलकान्त की बात सत्य सिद्ध हुई। प्रतिभा की

प्रसन्नता का पार न रहा। पुत्र को प्राप्तकर सेठानी बांसो उछलने लगी।

उसका नाम उसने प्रवीण रखा। प्रवीण बडा हुआ, उसका पाणिग्रहण वीणा के साथ सम्पन्न हुआ।

एक दिन अनिलकान्त बीमार हो गया। प्रवीण उसके पास जाकर बैठा! पिताजी अभी बहुत बडे डाक्टर को बुलालेता हूं। वह कोई असर दार दवाई दे देगा जिससे स्वास्थ्य शीघ्र ही ठीक हो जायेगा।

अनिलकान्त–प्रवीण! अब मैं कुछ ही घंटों का मेहमान हूं। डाक्टर को बाद मे बुलाते रहना। अभी मेरी अन्तिम तीन शिक्षाएं ध्यान से सुनना और उन्हे जीवन मे अपनाना। वे शिक्षाएं ये है—

(१) जहाँ पर राजा अपना न हो, अपने प्रति स्नेह न हो वहाँ पर नही रहना।

(२) जिस स्त्री का अपने प्रति प्रेम न हो जिसमें अर्पण करने की भावना न हो वहां न रहना।

(३) जहाँ पर मुनीम अपना न हो वहाँ पर न रहना।

प्रवीण—पिताजी आपको मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं आपकी शिक्षाओ को अपनाऊंगा ज्यो ही उसने यह आश्वासन दिया त्यो ही अनिलकान्त को एक हिचकी आई और सदा के लिए आंख मूंद ली।

प्रवीण पर अब सारी घर गृहस्थी की जुम्मेदारी आ गई। उसने गृहस्थाश्रम की गाडी को इस प्रकार चलाई कि लोग उसकी बुद्धि से विस्मित हो गए।

एक दिन राजा का एक प्यारा और सुन्दर मोर राजमहल से उडता हुआ उसकी हवेली की छत पर आ गया। उसने विचार किया कि अच्छा है राजा की परीक्षा भी कर लू। उसने मोर को एक कमरे में छिपा दिया। राजा मोर न मिलने से चिन्तित हुआ, उसने उज्जैनी में यह उद्घोषणा करवाई कि जो मोर लाकर देगा उसे पुरस्कार दिया जायेगा।

प्रवीण राजा के पास गया, राजा को एकान्त मे जाकर कहा—राजन्। आपका मोर उडता हुआ मेरे यहाँ आया, उस समय मेरी बुद्धिभ्रष्ट हो गई और मैंने मोर को मार दिया। ये देखिए मोर ने जो हीरे पन्ने आदि के आभूषण पहने थे वे ये है।

राजा—क्या कहा तूं ने मोर मार दिया, अरे दुष्ट यह तूने क्या किया, इसका यही दण्ड है कि तुझे अभी मृत्यु दण्ड देता हूं, मैं तेरे समान हत्यारे का मुंह तक देखना नही चाहता। जा तेरे अन्तिम समय मे मेरी इच्छा है कि एक प्रहर का समय है तू अपने परिवार वालो से मिलके आजा। इतने मे सूली भी तैयार हो जायेगी।

वह सीधा ही घर पर पहुँचा और अपनी पत्नी वोणा से कहा—वीणा! देख मेरे से एक भयंकर भूल हो गई है, मैंने राजा के प्रिय मोर को मार दिया है। राजा ने मुझे मृत्यु दण्ड की सजा दी है, बता क्या मुझ तू इंस मकान में कही छिपा सकती है? इस समय मेरे प्राणों की रक्षा करना तेरा कर्तव्य है।

वीणा—अरे क्या कहा आपने ! राजा के मोर को आपने ही मारा है। राजद्रोही को मैं अपने घर मे किस प्रकार स्थान दे सकती हूं। आपके कारण मेरे सारे बाल-बच्चो को मरना पडेगा, और मुझे भी। इसलिए आप शीघ्र ही मकान छोडकर चले जाइए। यदि आप मकान में ही छिपकर रह गये तो मुझे बाध्य होकर अपने परिवार की सुरक्षा के लिए राजा साहब को सूचना करनी होगी।

प्रवीण—वीणा ! घबराओ नही, मेरे कारण से तुम सभी को कष्ट हो ऐसा मैं नही करूंगा। लो यह मैं चला, तुम घर मे आनन्द से रहो।

प्रवीण सीधा ही घर से दुकान पर पहुँचा। दुकान पर बडे मुनीमजी बैठ थे। प्रवीण ने मुनीमजी को एकान्त में लेजाकर कहा, देखिए मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गई और मैंने राजा के मोर को मार दिया, अब मुझे राजा सूली पर चढाएगा मैं आपसे प्राणो की भिक्षा मांगता हूँ, तुम मुझे कही छिपा दो।

मुनीम ! सेठ साहब। आपने मोर को मारकर बहुत बड़ी भूल की है आप जानते हैं मेरे भी पांच बाल बच्चे हैं, आपके कारण मेरे को राजा के कोप का भाजन बनना पडे, यह कहां तक उचित है ? मेरे मे यह सामर्थ्य नही है। आप अन्यत्र पधारिए।

प्रवीण—मुनीमजी। आप चिन्ता न करे, मैं जाता हूँ।

प्रवीण ने जहाँ मोर को छिपाया था वहां गया और उसे लेकर राजा के पास पहुंचा। राजा के हाथों में मोर को थमाते

हुए बोला, लीजिए, आपका यह प्यारा मोर। मैंने पिता श्री की अन्तिम शिक्षा की परीक्षा के लिए ही यह सारा प्रपंच किया था, आप मोर संभालिए। अब मैं आपका राज्य छोडकर जा रहा हूं क्योंकि जहां का राजा अपना न हो वहां मुझे नहीं रहना है ! राजा ने बहुत ही इन्कारी की, पर वह न माना।

घर आकर वीणा से कहा कि मैंने पिताजी की अन्तिम शिक्षा के अनुसार तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैंने मोर नहीं मारा था, वह तो मैं राजा को दे आया हूं। तुम्हारा घर सभालो मैं विदेश जा रहा हूँ। दुकान आदि का संचालन भी तुम्हें ही करना है।

वीणा ने बहुत मनुहार की, पर प्रवीण रुका नही, मुनीम जी को सचेत कर चल दिया।

वह एकाकी महाराष्ट्र में पहुँचा। प्रारंभ में उसने एक सेठ के यहां पर नौकरी की। कुछ पैसा कमाने के पश्चात्, उसने एक स्वतंत्र दुकान खोलली। भाग्य और पुरुषार्थ के कारण उसने कुछ ही दिनो में लाखों की सम्पत्ती कमाली, और एक सुयोग्य कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण भी हो गया। वहां के राजा के साथ भी उसका मधुर सम्बन्ध हो गया।

एक दिन उसने सोचा की जरा परीक्षा करलूं। परीक्षा के लिए उसने एकाएक राजकुमार को अपने मकान में छिपा दिया। तीन दिन तक राजा ने राजकुमार की शोध

की, पर वह कहीं न मिला, राजा चिन्ता के सागर में गोते लगाने लगा।

प्रवीण राजमहल में पहुँचा और राजा को एकान्त में लेजाकर कहा राजन्। मेरे से एक भयंकर अपराध हो गया है। मैंने राजकुमार को मार दिया है, आप मुझे जो भी दण्ड देना चाहे सहर्ष देवें।

राजा ने बहुत ही गंभीरता से कहा—आप राजपुत्र को कभी भी मारने वाले नही है, तथापि भावो के वश इस प्रकार हो गया है तो अब चिन्ता न करे और साथ ही यह बात अन्य किसी को न कहे। आप आनन्द से जाइये।

प्रवीण घर पर आया, और आँखो से आँसू बहाते हुए उसने पत्नी से कहा—मेरे से एक भयंकर भूल हो गई है, मैंने राजकुमार को मार दिया है।

पत्नी ने कहा—पतिदेव! आप चिन्ता न करे, मेरे रहते हुये आपका बाल भी बाका नही हो सकता, यदि राज-कर्मचारी आयेंगे तो मैं कह दूंगी कि मैंने मारा है। सारा अपराध मेरा है।

प्रवीण घर से दुकान पर आया उसने वही बात मुनीम से भी कही। मुनीम ने कहा सेठ साहब! आप चिन्ता न करें मैंने आपका नमक खाया है, जब तक मै जीवित हूं, वहाँ तक आपको कोई भी कुछ भी कष्ट नही दे सकता। मैं राजकर्मचारियो से स्पष्ट शब्दो में कह

दूंगा कि सेठ साहब ' पूर्ण निर्दोष है, मेरा अपराध है, मुझे दण्ड दिया जाय।

प्रवीण को तो परीक्षा लेनी थी, राजा, पत्नी और मुनीम तीनो परीक्षा मे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये थे। उसने उसी समय राजकुमार को निकाला और राजा साहब को प्रदान कर दिया। और वह वही पर जमकर रहने लगा।

२०

कलियुग का बोध

एक समय पाचो पाण्डव उद्यान मे क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय विचित्र वेष-भूषा को धारण किये हुये, एक आदमी युधिष्ठिर के सामने उपस्थिति हुआ। उसे देखकर युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह आदमी एक साथ ब्राह्मण और यवन के वेश को किस कारण से धारण किए हुये है।

उस आगन्तुक व्यक्ति ने कहा—महाराज! मेरी निराली वेष-भूषा को देखकर आप चकित हो रहे है, पर आपको आश्चर्य देखना है तो अपने चारो भाइयो को चारो दिशाओं मे भेजे, आपको ज्ञात होगा कि संसार मे कैसी-कैसी विचित्र बाते है।

भीम पूर्व दिशा मे गये। एक नदी कल-कल छल-छल वह रही थी, चारो ओर हरियाली लहलहा रही थी, हरी-हरी घास बढी हुई थी। उन्होने देखा एक बारह मुह का भैंसा तेजी से चर रहा है, पर उसका पेट और कमर एक सदृश हो गई है। इतना सारा घास खाने पर भी वह भूखा है। यह तो महान आश्चर्य की बात है।

अर्जुन को दक्षिण दिशा में भेजा गया था। उन्होंने देखा—एक तत्काल प्रसूता गाय अपनी सद्य:जाता बछडी के स्तनों का पान कर रही है। अपनी ही बछडी के स्तनों का पान करती हुई, गाय को देखकर अर्जुन चकित हो गये।

नकुल को पश्चिम दिशा में भेजा गया। वे उधर बढ रहे थे कि सहसा उनके पैर ठिठक गये। उन्होंने देखा—अशोक वृक्ष की शाखा पर एक पिंजरा लटक रहा है। वह पिंजरा सोने से बना हुआ है और बहुमूल्य हीरे पन्ने, माणक मोती जवाहरात उसमें जड़े हुये हैं, उस पिंजरे मे एक कौआ बैठा हुआ है, और राजहंस सेवक की भांति उसकी सेवा कर रहा है।

सहदेव को उत्तर में जाने का निर्देश किया गया था। जब वह उत्तर दिशा मे अपने कदम बढा रहा था। एक स्थान पर उसकी आँखे विस्मय से विस्फारित हो गई। वहां परस्पर मे सटे हुये तीन कुंड थे। एक मध्य में था और दो कुण्ड उसके अगल-बगल में थे। अगल-बगल के कुण्डो मे से लहरे उठती और लहरों के माध्यम से एक कुण्ड का पानी दूसरे कुण्ड में गिरता, किन्तु बीच के कुण्ड मे एक बूंद भी नही गिरती था।

चारो भाई युधिष्ठिर के पास पहुंचे और उन्होंने उन्हें विस्तार के साथ मे अपनी आश्चर्य की कथा सुनाई।

उसी समय विचित्र-वेष-भूषा धारी पुरुष ने कहा— महाराज ! जरा आप भी मेरे साथ चलिये मैं आपको एक बहुत ही विचित्र दृश्य बताता हूँ। युधिष्ठर उनके साथ गये, उन्होने देखा—एक आदमी के सिर पर जूते बंधे हुये है। वह एक घड़े को उठाता है और उसके पानी को छह घडो मे डालता है तो वे छहों घडे भर जाते है, और दूसरी बार वह छहों घडों को सातवे घडे में उडेलता है तो भी वह सातवां घडा नही भरता है। युधिष्ठर को यह बात बडी आश्चर्यकारी लगी।

देखते ही देखते वह व्यक्ति दिव्य देव रूप में प्रकट हुआ उसने कहा जो आपने चित्र विचित्र वस्तुये देखी है उसका हाल इस प्रकार है—

आपने प्रथम भैसा देखा था जो बारह मुंहों से चरते हुये भी उसका पेट खाली था। इसका रहस्य है कि कलियग में राज्य के अधिकारी चारों ओर से रिश्वत लेंगे, तथापि सन्तुष्ट नही होंगे।

सद्य प्रसूता बछडी के स्तनपान करने की बात इस बात की प्रतीक है कि—कलयुग में माता-पिता अपनी लडकी के पैसे लेकर अपनी जिन्दगी का निर्वाह करेंगे। पैसे के लिये अपनी लडकी का विवाह रूग्ण व वृद्ध व्यक्तियों के साथ करने में हिचकिचायेंगे नही।

स्वर्ण पिंजरे में कौआ बैठा है और राजहस उसकी सेवा कर रहा है इसका तात्पर्य है कि कलयुग में निम्न व्यक्ति राज्य करेंगे और उत्तम पुरुष उनकी सेवा करेंगे।

अगल-बगल के कुण्डो का पानी एक-दूसरे मे गिर रहा है, पर बीच के कुण्ड मे एक बूंद भी नही गिर रही है वह इस बात का द्योतक है कि कलियुग मे मानव अपने सन्निकट के बन्धु-बांधवो को छोड़कर, पत्नी का जो दूर का सम्बन्ध है उसका भरण-पोषण करेंगे।

सिर जूते बाधने का अर्थ है कि पुरुष नारियो का गुलाम होगा और उस पर नारियां शासन करेगी।

एक घड़े के द्वारा छह घडो का भरना और छह द्वारा एक घड़े की पूर्ति नही कर सकेंगे, इसका तात्पर्य कि माता-पिता अपने सात-आठ पुत्रो का पोषण करेंगे, किन्तु सभी पुत्र मिलकर भी एक पिता, व माता का पोषण नही कर सकेंगे।

युधिष्ठिर ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि आप कौन है ?

उसने कहा—मैं कलयुग हूँ। कलयुग का रेखा—चित्र प्रस्तुत दृश्य करने लिए मैंने ये विविध दृश्य प्रस्तुत किये है। और वह आगे बढ़ गया।

२१

पृथक्-पृथक् सजा

बादशाह अकबर अपने सिंहासन पर आसीन थे। वजीर-दरबारी भी अपने-अपने आसनों पर जमे हुए थे। उस समय कोतवाल ने बादशाह के सामने एक अपराधी उपस्थित किया हजूर, इसने चोरी की है।'

बादशाह ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और मधुर स्वर में कहा—'यह कार्य तुम्हारे सम्मान के योग्य नहीं है, जाओ, अच्छी तरह से रहो।

वह चला गया। दूसरे अपराधी को लाया गया। उसने भी चोरी की थी। बादशाह ने उसे अच्छी तरह देखा, कुछ अपशब्द कहकर कहा—जाओ मेरे सामने से।

वह चला गया। तीसरे अपराधी को लाया गया। उसने भी चोरी का ही अपराध किया था, बादशाह ने उसे भी सम्यक् प्रकार से देखा, सिपाही से उसके सिर पर सात जूते लगवाये और धक्के देकर उसे महल से बाहर निकाल दिया।

तब चतुर्थ अपराधी को लाया गया। उसने भी चोरी की थी। बादशाह ने उसे भी ऊपर से नीचे तक देखा।

बादशाह ने आदेश दिया इसका काला मुह कर के और गधे पर चढ़ाकर शहर भर मे घुमाया जाये।

चारो अपराधी का अपराध एक था किन्तु दण्ड अलग-अलग था। सभी सभासदो के मन मे तर्क उठ रहे थे कि यह क्या है।

बादशाह से छिपा न रह सका, बादशाह ने पूछा—आप लोगो को कुछ कहना है।

सभासद्—जहांपनाह! आपके न्याय मे हमारा पूर्ण विश्वास है, पर हमे यह समझ मे नही आया कि जब सभी का अपराध एक है तो दण्ड मे जमीन आसमान का अन्तर क्यो है?

इस रहस्य को जानने के लिए उन चारो के पीछे एक-एक गुप्तचर रखता हूँ। जिससे आपको सही स्थिति का ज्ञान हो सके।

दूसरे दिन बादशाह अकबर सिंहासन पर बैठा, चारो गुप्तचरो ने अपनी-अपनी रिपोर्ट उनके सामने पेश की। एक ने निवेदन किया—जहांपनाह! जिसे आपने यह कहकर विदा किया था कि यह कार्य तुम्हारे सम्मान के योग्य नही है। उसने यहा से घर जाकर विष खा लिया और आत्म हत्या करली।

जिसे आपने अपशब्द कहकर निकाला था, वह अपना सब सामान लेकर दिल्ली छोड़कर चला गया।

तीसरे अपराधी के सिर पर सात जूते लगवाये थे, वह अपने घर गया और कमरा बद कर बैठ गया है।

चौथा अपराधी जिसका मुह काला किया गया था और गधे पर बिठाकर जब उसे ले जाया गया तब रास्ते मे उसे देखने के लिए हजारो व्यक्ति एकत्रित हो गये। कितने ही व्यक्ति उस पर थूकते और कितने ही गालियाँ दे रहे थे। रास्ते मे उसकी पत्नी मिल गई, उसने उसे आवाज दी, घर जा और मेरे नहाने के लिए पानी भर देना। थोडी सी गालियाँ बाकी है उनमे इन दुष्टो को घुमाकर अभी आता हूँ, तू मेरी तनिक मात्र भी चिन्ता न करना।

सभासदो को ज्ञात हो गया कि इसी कारण बादशाह ने एक अपराध की अलग-अलग सजा दी थी।

●

२२

कला का देवता

एक शिष्य गुरु के पास भिक्षा लेकर पहुंचा और भिक्षापात्र एक-एक कर दिखलाने लगा। गुरु ने कहा— वत्स! आज इतना विलम्ब कैसे हुआ ?

शिष्य ने विनम्र-वाणी से निवेदन किया—गुरुदेव ! मैं एक ऊंची अट्टालिका में पहुँचा, घर की अधिकारिणी ने मेरा स्वागत किया और एक लड्डू मुझे दिया। लड्डू लेकर ज्यों ही मैंने वहां से प्रस्थान किया त्यों ही मानस में ये विचार जागृत हुए कि यह लड्डू तो गुरुदेव श्री के काम आयेगा। लड्डू की मनोमुग्धकारी सुवास से मेरा मन विचलित हुआ और मैंने शीघ्र ही वैक्रियलब्धि से बालक का रूप बनाया और लड्डू की कामना से वहाँ पहुँचा, पूर्ववत् ही घर की अधिकारिणी ने एक लड्डू मुझे और दिया। और वहां से चलते समय फिर—विचार आया कि यह लड्डू तो मेरे साथी को मिलेगा, मैं तो यों ही लड्डू से वंचित रहूँगा अतः मैंने तीसरी बार एक वृद्ध का रूप बनाया और लड़खड़ाता हुआ पहुँचा, और तीसरा लड्डू लेकर आया। अतः विलम्ब हो गया"

गुरुदेव ने उपालम्भ देते हुये कहा—वत्स ! यह श्रमण का आचार नही है। इस प्रकार लब्धि का प्रयोग करना अनाचार है, तुम्हे इसका प्रायश्चित ग्रहण करना होगा। और भविष्य के लिये प्रतिज्ञा।

शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! आप मेरी कला की कद्र नही करते है। कला का उपयोग करने पर मुझे उपालम्भ देते है ! और प्रायश्चित के लिए कहते है ? क्या मेरी कला इसीलिए है ? मैं अब यहां नही रहूँगा।

गुरुदेव ने शान्त और मधुरवाणी से कहा—वत्स ! उत्तेजित न बनो, जोश मे होश को न भूलो। मै जो कहता हूँ मेरे लिए नही, पर तुम्हारे आत्म उत्थान के लिए। अनाचार का यदि प्रायश्चित ग्रहण नही किया जाता है तो वह जीवन में अधिकाधिक विकृतियां पैदा करता है अतः तुम्हे आत्मशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त लेना ही चाहिये।

शिष्य ने कहा—मुझे अब प्रायश्चित नही लेना है। साधु की कठोर चर्या मेरे से पालन नही होती, मैं जिस घर से भिक्षा लाया हूँ वह नाटकमंडली के उच्च अधिकारी का घर था उसने रूप परिवर्तन करते हुये मुझे देख लिया था, और उसने अपनी प्यारी पुत्रियों से कहा था कि यह साधारण पुरुष नही है, यह तो कला का देवता है। तुम दोनो इनकी उपासना करो। यदि तुम प्रेम से इनको आकर्षित कर मकी तो यह तुम्हे चमका देगा, और साथ ही नाटकमंडली भी चमक उठेगी।

दोनों लड़कियो ने मेरे से अत्यधिक अनुनय किया और कहा—नाथ ! पिता ने आपके चरणो में, हमें समर्पित कर दिया है, आप कहां पधार रहे है ? आप यही रहें, लड्डूओं की कोई कमी नही है। सन्त जीवन आप जैसे सुकुमारो के लिए कठिन है !

जब मैंने मना किया तब वे टप-टप आँसू बरसाने लगी, मैंने कहा—रोओ मत, गुरुदेव से पूछ कर आता हूँ, अत. गुरुदेव मै जा रहा हूँ, वे मेरी इन्तजार कर रही होगी। जहाँ कला की परख हो वही रहन मे आनन्द है।

जाते हुये शिष्य को रोकते हुये गुरुदेव ने कहा—वत्स ! जा तो रहे हो, मैं तुम्हे बांध कर नही रोक सकता, पर जाते-जाते एक बात मेरी स्मरण रखना कि 'जिस घर में मद्य-मांस का आहार होता हो वहाँ मत जाना'।

शिष्य शीघ्रता मे था, हां करके चल दिया। उसने दोनो बालाओ से पूछा—तुम मद्य मांस का आहार तो नही करती हो न ! यदि करती हो तो मैं पुनः जाता हूँ। बालाओं ने कहा—नही ! और वह वहां रह गया। आमोद प्रमोद करते हुये कई वर्ष व्यतीत हो गये।

× ×

आज उसे नाटक करना था, उसने अपनी दोनों पत्नियो से कहा—आज मैं पुनः नही लौट सकूगा। और वह नाटक करने के लिए चल दिया। पत्नियो ने सोचा पति आज तो आयेंगे नही अतः चिरकाल की अभिलाषा पूर्ण करलें। उन्होंने खूब मद्य-मांस का सेवन किया और नशे मे बेहाल हो गईं। मक्खियां भिनभिनाने लगी। इधर

वह नाटक करने गया, पर मन लगा नही, अतः मध्य मे से ही वह लौट आया, परन्तु पत्नियो की यह अवस्था देखकर उसे घृणा हो गई ! पति को देखकर वे घबरा गईं, उसने उन्हे फटकारते हुये कहा—तुमने वचन का भंग किया है अतः अब मैं यहाँ नही रह सकता, वह उलटे पैरो लौटा ! दोनो ने पैर पकड़ लिये, नाथ ! अपराध क्षमा करो, पर वह माना नही । उन्होने कहा—अच्छा, आप नही मानते है, जाना है तो जायें, पर कुछ आर्थिक व्यवस्था करके जाये । अच्छा, कहकर वह शीघ्र ही नाटक मच पर आया, हजारो की जनमेदिनी को सम्बोधित कर कहा—आज ऐसा नाटक करूंगा जैसा आज से पूर्व कभी न देखा होगा ।

नाटक प्रारंभ हुआ । दर्शकों का हृदय उछलने लगा । यह महान् अभिनेता है । इसका नाटक बड़ा ही निराला होता है । वह नाटक कर रहा था सम्राट भरत का । किस प्रकार जन्मते है, बड़े होते है, राज्य व्यवस्था करते हैं, चक्ररत्न की साधना करते है, आरीसा के भव्य-भवन का निर्माण कराते है और वस्त्र आभूषणो से सुसज्जित होकर शीश भवन मे पहुँचते हैं । शीश भवन को निहारते हुए हाथ की अगूठी गिरती है । तभी मन में चिन्तन की चिनगारियाँ उछलने लगी, अरे ढोगी ! कहाँ तू और कहाँ भरत चक्रवर्ती ! कहाँ तेरा निकृष्ट जीवन और कहाँ उस महापुरुष का जीवन ! कहाँ वह राजर्षि जो कमल की तरह निर्लिप्त और कहां तू वासना का गुलाम ! उस महा-

पुरुष की नकल करते हुये तुझे लज्जा नही आती ? अन्तर चेतना जाग्रत हुई, आभूषण उतारते हुये आत्म-मथन चला, आत्मज्योति जागृत हुई। दर्शको ने धन के अम्बार लगा दिये ! पर वह उसमे उलझा नही । केवलज्ञान और केवलदर्शन और अपार आत्म-वैभव उसे प्राप्त हो गया था। वह अब निहाल था, दर्शक यह देखकर अवाक् थे।

●

२३ | पावन व्रत

आचार्य प्रवर प्रवचन कर रहे थे। आत्मा को माजने के सुन्दर साधन बतला रहे थे। आत्मा-मलीन क्यों बनी ? वे उन कारणो पर प्रकाश डाल रहें थे। श्रोता झूम-झूम कर व्याख्यान श्रवण का आनन्द ले रहे थे।

प्रवचन समाप्त हुआ। जनता चली गई ! तब एक युवक आचार्य के पास आया। नमस्कार कर आचार्य श्री के चरणो मे निवेदन किया—गुरुदेव ! आपने अभी अपने पीयूष वर्षी प्रवचन मे फरमाया है कि 'आत्मा' चन्द्र के समान है। चन्द्र की चारु चन्द्रिका राहु से मुक्त होने पर ही छिटकती है। जब तक वह राहु के पाश मे आबद्ध रहेगा तक तक चन्द्रमा का चमचमाता हुआ प्रकाश संसार को दृष्टिगोचर नही होगा। शुक्ल पक्ष में राहु का विमान प्रतिदिन हटता रहता है जिससे प्रतिपदा से द्वितीया और द्वितीया से तृतीया की किरणें बढती रहती है। पूर्णिमा का चाँद पूर्णकला से युक्त होता है।

आत्म चाँद पर भी कर्मों का राहु लगा हुआ है जिससे

उसका आलोक अच्छन्न है। ज्यों ज्यों वह अत्याचार-अनाचार, भ्रष्टाचार दुराचार और व्यभिचार से मुक्त होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी ज्योति अधिकाधिक जगमगाती है, मैं आत्म ज्योति को विकसित करने के लिए शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भाँति आगे बढ़ना चाहता हूँ। चाँद जैसे अपनी चंचल किरणें बिखेरेगा वैसे मैं अपने आत्म-आलोक को।

आचार्य ने मुस्कराते हुए पूछा—वत्स, तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

मैं शुक्ल पक्ष में सदाचार मय जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता हूँ, युवक ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

वत्स ! प्रतिज्ञा ग्रहण करने में शीघ्रता अपेक्षित नही है। तलवार पर चलना सरल है किन्तु ब्रह्मचर्य के महामार्ग पर चलना कठिन है ? जिस मार्ग पर चलते समय ज्ञानियो, ध्यानियों और तपस्वियो के भी कदम लड़खड़ा जाते है। वासना कोकिल कुहुक कुहुक कर अन्तर्मानस में गुदगुदी पैदा करता है। उस समय प्रतिज्ञा का भग न करना वीरता है, स्वीकृत सकल्प का परित्याग न करना धीरता है, साहस है—आचार्य श्री ने कहा।

भगवन ! मैंने इस पर गभीरता से सोचा है। विचारा है और उसके पश्चात् ही अन्तर्मानस की बात आपके समक्ष प्रकट की है…… आत्मा बालक नहीं है, दुर्बल नही

है। उसमें अनन्तशक्ति है सामर्थ्य है। मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि भोगो की चकाचौध में कृत संकल्प से विचलित नही होऊंगा—युवक ने विनम्र निवेदन किया।

युवक की प्रशस्त भावना को देखकर "जहा सुह देवाणुप्पिया" के रूप मे आचार्य प्रवर ने स्वीकृति प्रदान की। युवक प्रतिज्ञा ग्रहण कर घर लौट आया।

× ×

शीतल मन्द सुगन्धमय समीर के साथ ही नगर में ये सुखद समाचार फैल रहे थे कि सती समुदाय का आगमन हुआ है, भावुक भावुक भक्त-भ्रमर सद्गुणो की सरस सौरभ ग्रहण करने के लिए पहुँचे। सतीजी ने अन्धकार और प्रकाश का गंभीर विश्लेषण करते हुए कहा—अन्धकार के पुद्गल अशुभ होते हैं और प्रकाश के पुद्गल शुभ होते हैं। मन—वाणी और कर्म जब अशुभ कार्य की ओर प्रवृत्ति करते है विकार और वासनाओ की ओर बढते है, तब आत्मा अन्धकार की ओर बढ़ता है, जब वे शुभ मे प्रवृति करते हैं, त्याग वैराग्य को ग्रहण करते है। संयम-साधना, तप, आराधना और मनोमन्थन करते हैं तब आत्मा प्रकाश की ओर बढ़ती है।

भक्त-भ्रमर जब उड़ गये तब एक कुमारिकाने आगे बढ़कर वंदना करते हुए कहा—सद्गुरुणी जी ! पाप अन्धकार है विकार अन्धकार है, वासना अन्धकार है। मैं पक्ष अन्धकार के अन्धकार की ओर नही बढूंगी, कृष्ण पक्ष में आत्मा को कृष्ण न बनाऊँगी।

क्या आशय है तुम्हारा ?—सतीजी ने पूछा।

मै कृष्ण पक्ष में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगी—शान्त किन्तु सबल वाणी में उत्तर मिला।

सतीजी की मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वे उसके उत्तर को सुनकर प्रसन्न है। उन्होने कुछ रुक कर कहा—तुम्हारे विचार श्रेष्ठ है, किन्तु प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना !

यह आर्य बाला कभी विचलित न होगी—उसने दृढता से कहा।

+ +

सुहाग की प्रथम रात थी। दीपक के प्रकाश से प्रकोष्ठ जगमगा रहा था। रत्न जटित उच्च आसन पर बैठी हुई सुन्दरी द्वार की ओर अपलक दृष्टि से देख रही थी कि नई उमंगे, नई तरगे लेकर धीरे से युवक ने प्रवेश किया।

सुन्दरी ने उठकर स्वागत किया और अभ्यर्थना करती हुई बोली—आर्यपुत्र ! यह कृष्ण पक्ष है न ! इस कृष्ण पक्ष में आत्मा क्यो कृष्ण बनाई जाय, यही सोचकर मैंने सद्-गुरुणी जी के समक्ष पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का सकल्प किया है और वह भी जीवन भर के लिए।

सुन्दरी की बात सुनते ही युवक चौका। उसका चेहरा मुरझा गया, वह चिन्ता के महासागर मे डुबकी लगाने लगा।

स्वाभाविक मुस्कान बिखेरती हुई सुन्दरी ने कहा—प्रियतम ! आप चिन्ता न कीजिये। यदि आप वासना पर विजय प्राप्त नही कर सकते है, विकारो को नही जीत

सकते है तो मैं सहर्ष आपसे अभ्यर्थना करती हूं कि आप दूसरा विवाह करलें।

सुभगे ! यह बात नही है। चिन्ता का रहस्य कुछ और है। मैं अपने लिए चिन्तित नही हूँ, तुम्हारे लिए चिन्तित हूँ—युवक ने गंभीर मुद्रा में कहा।

आर्यपुत्र ! आप मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता न करे। मैंने जो प्रतिज्ञा ग्रहण की है वह सोच विचारकर की है—बाला ने गभीरता और दृढता से कहा।

प्रिय ! मैंने भी आचार्य वर से शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य का नियम ले रखा है, जब तुम अपने पर काबू पा सकती हो तो क्या मैं अपने पर नहीं पा सकता ? जिस पथ पर आत्मबल की न्यूनता के कारण हम नही बढ सके थे। उस महामार्ग पर आज हमें एक दूसरे का बल पा कर बढना है, हम मंत्रो की साक्षी से एक दूसरे से बन्धे है। जीवन के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमने विवाह किया है, तो हाथ आगे बढ़ाओ, आज से हम अपने दाम्पत्य जीवन मे भाई-बहिन की पवित्रता की प्रतिष्ठा करेंगे। अवश्य हमारा यह पावन व्रत जगत मे एक अनूठा और अमर आदर्श होगा। इस महान संकल्प पर आकाश में असख्य-असंख्य तारे चमक कर बधाईयां दे रहे थे।

२४

मूर्खों का सूचीपत्र

एक सौदागर बढिया घोड़े दिल्ली दरबार में लेकर आया। बादशाह अकबर ने उन घोड़ों को बहुत पसन्द किये और वे सभी घोड़े खरीद लिये। और साथ ही उस सौदागर को एक लाख रुपये इसलिए दे दिये कि दूसरे वर्ष वह इसी प्रकार के घोड़े ले आवे।

सौदागर के चले जाने के कुछ दिन पश्चात् बादशाह ने पूछा—बीरबल! मेरी एक इच्छा है कि हिन्दुस्तान में जितने बेवकूफ है उनकी एक फहरिस्त तैयार की जाय।

बीरबल—जी हजूर! यह कार्य आज से ही प्रारंभ कर दिया जायेगा। कुछ ही दिनों मे मूर्खों की सूची तैयार हो गई और वह बादशाह सलामत की सेवा मे पेश की गई।

सूची खोलकर बादशाह ने देखा कि सबसे प्रथम उनका ही नाम है जिसे देखते ही बादशाह लाल पीला हो गया और कहा कि यह क्या! बतलाओ यह तुमने क्यो लिखा?

बीरबल—जिसे हजूर न जानते है और न पहचानते है उस सौदागर को एक लाख रुपये दिये तो क्या वह

मूर्खता नही है।

अकबर—यदि सौदागर घोड़े ले आया तो बतलाओ तुम्हें क्या दण्ड दूं। बीरबल—जहाँपनाह! यदि वह घोड़ ले आयेगा तो आपके नाम के स्थान पर उसका नाम रख दिया जायेगा। हमारे दण्ड का सवाल तो पैदा ही नही होता। बादशाह चुप-हो गया।

●

२५

परिव्राट् और सम्राट्

आज मुख कमल क्यों मुरझाया हुआ है, चेहरा प्रसन्न नही है, किस चिन्ता सांपिनी ने डसा है ? परिव्राट ने एक दीवान से पूछा ।

क्या पूछते है गुरुदेव, अनर्थ, महाअनर्थ ! कहते-कहते गला रूंध गया, आगे शब्द जिह्वा के बाहर नही निकल सके, आँखें आंसुओ से डबडबा गईं ।

आचार्य श्री ने कहा—मैं समझ गया तुम्हारे दुःख का कारण ।

किस प्रकार समझ गये, मेरे मन की बात ! मेरे कष्ट का कारण किसी को भी पता नही, और फरमा रहे है कि मैं समझ गया, तो बतलाइये, आप क्या समझ गये है ? दीवान खिवसिंह ने आशा कि दृष्टि से जैनाचार्य पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की ओर देखा ।

निरपराध राज कन्या को मौत के घाट उतारने की घटना ने ही तो तेरे दयालु हृदय को द्रवित किया है ?

दीवान आचार्य श्री की बात सुनकर अवाक् था ।

क्या आचार्य श्री का आध्यात्मिक विकास इतना बढ़ा चढ़ा है जिससे मन की बात जान लेते है।

दीवान ने दीनस्वर से पूछा—भगवन्! क्या कोई उपाय है, क्या उस अविवाहिता कन्या के प्राण बच सकते है, बादशाह ने इस कार्य की जांच करने के लिये वजीर को नियुक्त किया, वजीर का और मेरा घनिष्ट प्रेम है। बाला को देखने के लिए उसने मुझसे आग्रह किया कि क्या तुम भी चलोगे। मैंने सहर्ष अनुमति दे दी। गये, कमरा बन्द था? अन्दर से करुण क्रन्दन स्पष्ट सुनाई दे रहा था। वह अबला बाला छाती मत्था पीट रही थी, हाय किस्मत! मै राजकुल मे जन्मी, अपना अनमोल रत्न किसी के हाथ नही बेचा, समझ मे नही आता, किस कर्म के उदय से मुझे गर्भ रह गया, वह अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई रो रही थी, उसे हमारे पैरो की खनखनाहट सुनाई दी, वह उठी और तेजी के साथ बढ़ी, द्वार की ओर देखने के लिए कि कौन खड़ा है बाहर, द्वार खोला, वजीर को और मुझे देखते ही धड़ाम से गिर पड़ी, पत्थर से सिर टकरा गया, मस्तिष्क से खून बहने लगा। पृथ्वी रक्त रंजित हो गई।

उस अबला के सिर पर वजीर ने हाथ फेरा, बेटी! घबराओ मत, हवा की, उसके मुह मे पानी दिया, घाव पर पट्टी बांधी, मूर्छा दूर हुई, कुछ चेतना आई, आंखें खोली फिर मीचली और कुछ समय बाद बोली—वजीर जी आपके साथ ये कौन है। इस दुनिया मे मेरा तो कोई

नही है, मै अकेली हूँ, असहाय हूँ, क्या आप मेरी सहायता करने के लिए आये है। वह आगे कुछ न कह सकी, सिसक-सिसक कर रोने लगी।

वजीर ने कहा—ये जोधपुर के दीवान खिवसिंह है, मेरे दोस्त है, मुझे को बादशाह बहादुरशाह ने तुम्हारे कार्य की जांच करने के लिए नियुक्त किया है। बादशाह ने कहा है—सात दिन मे तुम सही निर्णय नही करोगे तो मै सातवे दिन उस पापिनी को फांसी चढ़वा दूंगा, उसने शाही कुल मे कलक लगाया है। मै इसी की जांच करने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ।

उसकी आखो से आसुओ की अविरल धारा बह रही थी। मृत्यु के भयानक भय से वह कांप रही थी, तथापि धैर्य धारण कर उसने कहा—वजीर, जी मैं साफ हृदय से कहती हूँ कि मैं पाक हूँ, मैंने कभी भी निंद्यकर्म नही किया, कुत्सित और घृणित आचरण नही किया। तथापि क्यो गर्भ रह गया, मैं कह नही सकती, उसने सिर वजीर के चरणो मे रख दिया, वह प्राणो की प्रार्थना करने लगी, इस निरीह अबला बाला को बचाओ, बचाओ !

उसको आश्वासन देने के लिए वजीर ने कहा, बेटी ? घबरा मत, तू फिक्र मतकर, तुम्हारा कोई अनिष्ट नही होगा। मैं पूर्ण प्रयत्न करूंगा, ये शब्द कहते-कहते बूढ़े वजीर की आखो मे भी आंसू आ गये।

हे भगवान ! मेरा तो इस करुण दृश्य को देखकर हृदय कांँप गया, रह-रह कर उस बाला की दर्द भरी पुकार

कर्णकुहरो मे गूंज रही है, बचाओ, बचाओ।.......... ....
न मैंने तबसे भोजन किया, इसी विचार में सोया, किन्तु नीद नही आई, वजीर भी इसी चिन्ता मे रातभर तडपते रहे,, किन्तु समस्या का समाधान नही कर सके। मैंने विचारा प्रातःकाल जाकर ही आचार्य देव से पूछूंगा कि बचाने का कोई उपाय है।

आचार्य श्री ने कहा—मन्त्रीवर ! चिन्ता की विशेष बात नही, यह तो मैं आगम प्रमाणो से निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि उस अबला का तनिक मात्र भी अपराध नही है। अब उसे बचाने का एक उपाय है यदि तुम कर सकते हो तो वह उपाय यह है कि जब तक वह बालक उत्पन्न न हो जाय तब तक उसे मारा न जाय। दीवान ने कहा— इसका क्या मतलब है गुरुदेव, क्या बाद मे मारना।

आचार्य श्री ने कहा—नही ! इसमे एक कारण है, यदि वह बाला अपने कर्त्तव्य मार्ग से फिसल गई होगी तो उस बच्चे के रोम होगा, हड्डियां होगी, यदि उसने अपराध नही किया है, तो वह नव जात बालक हड्डियां और रोम-रहित होगा, वह अड़तालीस (४८) मिनट में पानी के बुद-बुदे की तरह नष्ट हो जायेगा।

दीवान ने नमस्कार किया, और खुश होता हुआ वह वजीर के पास गया, उसने आचार्य श्री की बात वजीर के सामने रखी, वजीर को यह बात बहुत पसंद आई।

खिवसिंह के साथ ही वजीर बादशाह सलामत के पास पहुँचे।

वजीरजी, क्या उस सम्बन्ध में जाच की ? बादशाह ने पूछा।

वजीर ने सारी रामकहानी बादशाह को सुनाई, बादशाह को आश्चर्य हुआ, उसे फकीर की बात पर विश्वास नही हुआ। वह खिल-खिलाकर हंस पड़ा, अच्छी मारी है गप्प तुमने।

अनुभव करके देखिए, आचार्य श्री के वचनों मे सत्य है और तथ्य है।

बादशाह विचार में पड़ गया, अच्छा, तुम, कहते हो तो अभी रहने देता हूँ, किन्तु यह बात झूठी है।

दिन बीतते गये, बालक ने जन्म लिया, बादशाह वजीर और दीवान सभी उसे देखने गये, देखा बालक आचार्य श्री के कथनानुसार ही है। हड्डी और रोमरहित। देखते ही देखते उस मांस पिंड का क्षण भर में पानी-पानी हो गया। बर्फ की तरह वह पिघल गया, सभी सहम गये, आचार्य श्री की वाणी सत्य सिद्ध हुई।

सम्राट् चल पड़ा परिव्राट की सेवा मे, जनता यह देखकर आश्चर्य चकित थी कि परिव्राट् के चरण कमलो में भारत का सम्राट झुका हुआ है।

२६ | क्षमामूर्ति

भूतल जल रहा था, ग्रीष्म की उष्णवायु मानव देह मे सन्ताप पैदा कर रही थी। ग्रीष्म के ताप सन्ताप से बचने के लिए प्राणी अपने घरो में जा छिपे थे।

जलते हुए मध्यान्ह में भी राजप्रासाद में शीतलता थी, सम्राट् अपनी प्रधान महिषी के साथ बैठा हुआ रंग-रेलिया कर रहा था, चन्दन की सुमधुर सौरभ से महल महक रहा था। बिखरे हुये वैभव को देखकर अभिमान का समुद्र ठाठे मार रहा था।

महारानी ने अपने सौहार्द व चातुर्य से महाराज को अपने वश मे कर लिया था।

हाथ मे पान का बीड़ा लेते हुए महाराज ने कहा—मेरी हृदय साम्राज्ञी! मैं आज तुझे अपने हाथो से पान खिलाऊँगा, मदिरा की प्याली तो तुम नही पीती हो, किन्तु पान खाओगी न, मुंह खोलो, पान खालो! रानी ने भी हाथ बढाया, लो महाराज! इस तुच्छ दासी के हाथ का पान आप भी खालो न! मुंह मे पान देती हुई रानी हंस पड़ी।

राजा ने थूंकने के लिए अपना मुंह गवाक्ष के बाहर निकाला त्योंही उसकी दृष्टि एक योगी पर गिरी ! खुला सिर था, नगे पैर थे, पृथ्वी पर दृष्टि डाले हुये सावधानी से चले जा रहे थे ।

शरीर भव्य था, तपस्तेज अंग-अंग से टपक रहा था, सिर बड़ा था, उस पर घुंघराले बाल हवा से लहरा रहे थे, अंग सौष्ठव को देखकर दर्शक के दिल मे यह विचार-धारा पैदा हो जाती थी कि किस कारण से इस महामानव ने ससार की मोहमाया को छोड़ा है, यह जवानी मे इतना बड़ा त्यागी कैसे बना है ?

मुनि को देखते ही महारानी के हृदय मे एक युग की वह पुरानी स्मृति जाग उठी । मेरा प्रिय भ्राता भी तो ऐसा ही था न ! धन्य है उस भ्राता को, जो मेरी जवानी में इस प्रकार तपकर रहा होगा, धिक्कार है मुझको जो उसकी बहिन होकर इस प्रकार विषयासक्त हूँ । कहाँ उसका प्रकाशमय जीवन और कहाँ मेरा अंधकारमय जीवन ! उसका कितना ऊँचा जीवन है, मेरा कितना नीचा जीवन है ! विचारते-विचारते आंखो से अश्रुकण गिर पड़े ।

महाराज बोले, कब तक देखती रहोगी, मेरी ओर देखो न, मैं तो तुम्हारी ओर कब से टकटकी लगाकर देख रहा हूँ, किन्तु तुम तो बिल्कुल ही बे-परवाह हो गई ।

महाराज ने आंख ऊपर उठाकर देखा, महारानी के आंखो से अश्रुकण गिर रहे थे, क्या कारण है ? आंखों में

ये आंसू कैसे ? महारानी ने बात टालते हुये कहा—कहां है आंसू ? नाथ ! आपको यो ही भ्रम हो गया है।

सम्राट ने खिड़की से बाहर मुंह निकाला तो देखा, वीथिकाएं जनशून्य है, एक ही योगी उस दीर्घ पथ पर चला जा रहा है। मालूम होता है यह उसका प्रेमी है, मैं भी इसका प्रेमी हूँ, इसके रूप के सामने मेरा रूप तो दिन के चन्द्र के समान है। एक म्यान मे दो तलवारें कभी नही रही है, आज ही मैं इसे क्यो नही परलोक पहुँचादूं, न रहेगा बास न बजेगी बांसुरी।

महाराज ! कहां चल दिए, जरा बात तो सुनकर जाइए !

सुन्दरी ! अभी नही, फिर कभी, यो कहते-कहते ही महाराज रंगभवन का त्याग कर, बाहर निकल गये। सुन्दरी स्तब्ध होकर देखती रह गई, यह रंग मे भंग किस प्रकार हो गया, वह कुछ भी नही समझ सकी।

महाराज पधारिये ! सिंहासन को शोभित कीजिए। नही ! नही ! अभी मैं सिंहासन पर नही बैठूंगा जब तक मैं अपने शत्रु का काम तमाम नही कर दूंगा, तब तक मुझे शांति नही ! राजा की गंभीर गर्जना से सैनिक कांप गये, सम्राट् ! आपके शत्रु कौन है, इस पृथ्वी पर ? आज्ञा दीजिए

इन सैनिको को, आज्ञा होते ही उसे जीवित ही कैद कर लाएं या उसका सिर काटकर लाए।

मेरे प्यारे योद्धाओं ! जाओ मुख्य राजपथ पर एक योगी जा रहा है, उसे पकड लाओ ।

कन्धे पर धनुष बाण लटकाऐ हुए हाथ मे तलवारे लिए हुऐ अश्वारोही चल पड़े ।

ठहरिए, योगीराज ! कान खोलकर सुनिए, राजा की आज्ञा है; तुम्हें कैदी बनाऐंगे । मुनि शान्त भाव से खड़े थे, मुख मंडल मृदु हास्य से आलोकित हो रहा था ।

जनता बोल उठी, अरे आततायियों ! इस त्यागमूर्ति तपस्वी को क्यों कैदी बना रहे हो ? किन्तु किसकी हिम्मत थी जो राजाज्ञा को ठोकर लगाकर आगे बढता ।

नगर में सर्वत्र हाहाकार मच गया । महान् अन्याय हुआ है । एक निरपराध मुनि को राजसेवक पकड कर ले गये हैं । राजा तो इतना अच्छा है, किन्तु आज इसने यह क्या कर दिया है ?

सैनिको ने महाराज के सन्मुख मुनि को उपस्थित किया । महाराज ! यह है आपका अपराधी । सम्राट् रक्त पूर्ण नेत्रों से मुनि को देखता है ।

दांत पीसते हुऐ, मूछो पर हाथ रखते हुऐ, राजा दण्डक बोला—आज मैं इसे बडा दण्ड दूंगा, तभी मालूम होगा इसे मेरे पराक्रम का । दण्डक की आंखे क्रोध से रंजित थी । सभी सेवक नतमस्तक खड़े हुए आज्ञा की राह देख रहे थे ।

गंभीर गर्जना करते हुऐ दण्डक ने कहा—इस अपराधी को श्मशान में ले जाओ, इसके शरीर की चमडी उतार दो, गड्ढ़ा खोदकर, इसके शरीर को उसमें गाड़कर इसके

सिरपर घोड़े दौडा दो। और अन्त मे इसका सिर तलवार से उडा दो। जो आज्ञा की अवज्ञा करेगा उसे भी इसी प्रकार का दण्ड दिया जावेगा।

क्षणभर सभी स्तब्ध रह गये, कुछ भी निर्णय कर नही पा रहे थे! यह क्या है? दण्ड है या महादण्ड! पाषाण हृदय हत्यारो का हृदय भी काप उठा, सम्राट के निर्णय को सुनकर मुनि के चेहरे पर क्रोध की एक भी रेखा नही थी। वहा शान्ति का अक्षुण्ण तेज था। मुंह से वेदना का एक भी शब्द नही सुनाई दे रहा था, वहां तो यही शब्द सुनाई दे रहे थे।

"खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे,
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई।"

मैं सब जीवो को क्षमा करता हूं और वे सब जीव भी मुझे क्षमा करे। मेरी सब जीवो के साथ मित्रता है किसी के साथ भी वैर विरोध नही है।

मुनि मेरु की तरह अविचल खडे थे, उपसर्गों को शान्त भाव से सहन कर रहे थे, क्रोध को प्रेम से जीत रहे थे। शरीर से रक्त की धारा वह रही थी, किन्तु हृदय से तो इससे भी अधिक प्रेम धारा बह रही थी। न राजा पर द्वेष था और न शरीर पर राग ही था। कर्म पटल दूर होते ही आत्मा केवल ज्ञान और केवल दर्शन के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो गई।

दण्ड देने वाले हत्यारो के हाथो से तलवारें गिर पडी, क्षमा मूर्ति! हमे क्षमा करना!

२७ | करुणामूर्ति

भगवान् भास्कर अपनी स्वर्णिम रश्मियो के साथ व्योम पर आधिपत्य स्थापित कर अठखेलियाँ कर रहा था, चारो ओर भीष्म ग्रीष्म का साम्राज्य था।

एक महामुनि जिसका दमकता हुआ, चेहरा लम्बी ललाट, गौरवर्ण, वैभवपूर्ण उज्वल नयन, हँसता मुखडा जिसे देख नागरिक आश्चर्यान्वित हो रहे थे, यह क्या हो गया ? एक दिनकर तो आकाश मे है, दूसरा पृथ्वी पर कहां से आ गया।

तप से कृशकाय होते हुए भी क्या तेज है इनके मुखड़े पर, इनकी तेजस्विता के सामने व्योम मे विचरण करने वाला सहस्त्ररश्मी सूर्यदेव भी फीका मालूम हो रहा है।

वह महाश्रमण तो नीची दृष्टि किये हुये, चला जा रहा था, चुपचाप, अपने आपमे लीन होकर। एकाएक भव्य-भवन का द्वार खुला, एक बहिन ने आवाज लगाई, महाराज कृपा कीजिए, आहार सूझता है।

श्रमण पहुँचा भोजनालय में, बहिन का कर कमल शाक

के पात्र से सुशोभित था । मुनि ने पृथ्वी पर पात्र रखा, बहिन ने वह भोजन, नही, नही, वह शाक डाल दिया, साधु पात्र मे । मुनि तो कहता ही रहा थोड़ा-थोडा किन्तु उसने समस्त शाक देकर ही विश्राम लिया ।

मुनि लेकर लौट पड़ा, आचार्यश्री विराजमान थे, आहार सारा सामने रखा, देखिए गुरुदेव ! यह लाया हूँ ।

वत्स ! मासखमण की दीर्घ तपस्या के पारणे मे केवल शाक ही ।

भगवन् ! क्या कहूँ, उस बहिन की भक्ति, मेरे मना करने पर भी, उसने समस्त शाक दे दिया । कृपा कीजिए "साहू हुज्जामि तारियो" के शास्त्रीय स्वर में उस श्रमण ने सद्गुरुवर्य से प्रार्थना की ।

प्रार्थना को सन्मान देते हुए आचार्यश्री ने शाक का एक कण मुंह मे रखा, तुरंत उसे पुनः बाहर निकाल दिया । वत्स ! यह क्या लाया है, यह तो जहर है, हलाहल है ।

देव ! मुझे पता नही था, कृपया मेरे अपराध को क्षमा कीजिए । आपको कष्ट हुआ ।

अन्य शिष्यों को आज्ञा प्रदान करते हुए आचार्यश्री ने गंभीर मुद्रा में कहा—जाओ ! इस आहार को एकान्त स्थान मे डाल आओ ।

गुरुदेव ! यह मेरा कार्य है, इसे मैं ही करूंगा, अन्य को इसके लिए कष्ट न दीजिए, आचार्य विवश थे ।

वह मासिकव्रती मुनि, हाथ में पात्र लेकर चल पड़ा

वन प्रदेश की ओर, तप्ततवे के समान भूमि तप रही थी। मुख कमल मुरझा रहा था, किन्तु वह योगी तो बढ़ा ही जा रहा था, इसी धुन मे जहां कोई जीव-जन्तु न हो।

एक स्वच्छ स्थान दिखाई दिया, प्राणियों से रहित, एक कण आहार डाला, भूमि पर और पास ही बैठकर देखने लगा, कि कोई प्राणी तो नही आता है। घृत और शक्कर से पके हुए शाक की गन्ध से पृथ्वी पर विचरण करती हुई चीटियां आईं, मानो हलाहल शाक के रूप मे मृत्यु उन्हें आह्वान कर रही थी।

मुनि का मन क्षुब्ध-विक्षुब्ध हो उठा, तिलमिला उठा, क्या इस शाक से मैं प्राणियो का विनाश या सर्वनाश करूँ, नही कदापि नही, भूल करके भी नही।

करुणा सागर का हृदय करुणा की हिलोरे लेने लगा। अनुकम्पा की परम पवित्र भावना हृदय समुद्र मे ठाठे मारने लगी, उसने पात्र उठाया, चीटियों की रक्षा के लिए, अन्य प्राणियों को सुखी देखने के लिए, शान्तभाव से उस हलाहल के शाक को खाया, उस धर्ममूर्ति धर्मरुचि अनगार ने, गगन मंडल मे अनुकम्पा की महिमा का जय नाद गूंज उठा—

"दिया नागश्री ने कटुक शाक जिसको,
उस धर्मरुचि ने, पिया कैसे विषको।"

२८

शिष्यों की परीक्षा

सन्ध्या की लालिमा समाप्त हो गई थी। आचार्य विश्वकीर्ति अध्यापन से निवृत्त हो तृणसंम्तरण पर लेटे हुए विश्रान्ति की मुद्रा में थे। सहसा उनके तीन अन्तेवासी शिष्यो को वन्दन कर निवेदन किया—"गुरुदेव ! हमारी शिक्षा समाप्त हो गई है अब हम गृहस्थाश्रम मे प्रवेश की अनुज्ञा चाहते है।

आचार्य ने शिष्यों की इच्छा देखकर आज्ञा प्रदान की। तीनो शिष्य सहर्ष अपने स्थान पर आकर प्रस्थान की तैयारी करने लगे। आचार्य ने उनके जाने के पश्चात् सोचा—मैंने अनुमती तो दे दी है, पर परीक्षा कर नही देखा कि इन तीनो मे कौन जाने के योग्य है ? इन तीनो मे से कौन मेरे नाम को, चार चाँद लगायेगा और कौन नही।

ऊषा की सुनहरी किरणे अभी निकली ही नही थी, आचार्य उठे और शौचादि निवृत्ति हेतु उसी दिशा मे गये जिस दिशा में आज तीनो शिष्य गमन करने वाले थे। शिष्यो की परीक्षा के लिए कुछ कांच के टुकड़े मार्ग में

बिखेर दिये और स्वयं सन्निकट की झाड़ी में छिपकर देखने लगे।

कुछ ही समय के पश्चात् तीनो शिष्य वही आ गये। प्रथम शिष्य कांच के टुकड़ो को लांघकर बिना संकोच आगे बढ गया। और दूसरे शिष्य के कदम शिथिल हो गये। वह सोचने लगा—ये तीक्ष्ण कांच के टुकड़े किसी राही के कोमल पैरो को क्षत विक्षत न बनादे अतः इन्हे मार्ग से हटा देना चाहिए, पर जाना दूर है, मार्ग लम्बा है। यदि इस तरह हटाता रहा तो कब घर पहुँच पाऊंगा, ऐसा सोच उसके कदम पुनः तेज हो गये। तीसरा शिष्य वही रुक गया, उसने अपनी पोथी-पत्रोको एक तरफ रखा और ध्यान पूर्वक उन कांच के टुकडों को बीनने लगा। दोनो साथियो ने कहा—भाई ! यह क्या कर रहे हो ? जल्दी चलो, धूप चढ जाएगी। यो तुम कहां तक रास्ता साफ करते रहोगे।

उसने कहा—भाई यह तो मेरा कर्तव्य है, उसकी बात पूरी भी न होने पाई थी 'कि आचार्य झाडी मे से निकल आए। तीनो शिष्य आश्रम से चार मील की दूरी पर आचार्य को देखकर दग रह गये।

आचार्य ने कहा —मैंने अभी तुम तीनो का अपनी आंखो से आचरण देखा है और कानो से तुम्हारी बात भी सुनी है। मुझे महान् आश्चर्य है कि वर्षों तक तुम मेरे अन्तेवासी बन आश्रम में रहे हो। शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन किया है पर तुम दोनों का अध्ययन अभी अपरि-

पक्व है। तुम जब राह में पडे हुए पत्थर व कांच के टुकडो को हटाकर किनारे नही कर सकते तब तुम से मैं यह कैसे आशा रखू कि समाज-परिवार और राष्ट्र की राह मे आए विघ्न और बाधाओ की चट्टानो को तुम दूर कर सकोगे। शिक्षा का अर्थ पुस्तकें कंठाग्र कर लेना नही है और न किसी विषय पर लच्छेदार भाषा मे भाषण दे देना हो है किन्तु शिक्षा वह है जो जीवन को सजाती हो सवारती हो और मुक्ति प्राप्त कराती हो "सा विद्या या विमुक्तये।'

तृतीय शिष्य के सिर को चूमते हुए आचार्य ने कहा-वत्स! तुम परीक्षा मे पूर्ण सफल हो, तुम्हाराज्ञान निरन्तर बढता रहे, शुक्ल पक्ष के चंद्र की तरह तुम्हारी कीर्ति कौमुदी प्रतिपल प्रतिक्षण बढती रहे। मेरी शुभाशीष-तुम्हारे साथ है, तुम जाओ, और खूब चमको।

●

लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियां

१ ऋषभदेव : एक परिशीलन

(शोध प्रबन्ध) मूल्य ३)०० रु०

२ धर्म और दर्शन (निबन्ध) मूल्य ४)०० रु०

दोनो के प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामडी आगरा—२

३ भगवान् पार्श्व: एक समीक्षात्मक अध्ययन

(शोध प्रबन्ध) मूल्य ५)०० रु०

प्रकाशक—प० मुनि श्रीमल प्रकाशन

जैन साधना सदन, २५९ नानापेठ पूना—२

४ साहित्य और संस्कृति (निबन्ध) मूल्य १०)०० रु०

प्रकाशक—भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बोक्स १०८-कचौडी गली, वाराणसी—१

५ चिन्तन की चांदनी

(उद्बोधक चिन्तन सूत्र) मूल्य ३)०० रु०

६ अनुभूति के आलोक में

(मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४)०० रु०

दोनों के प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा

७ सस्कृति के अंचल मे (निबन्ध) मूल्य १)५०
प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडय, जोधपुर

८ कल्प सूत्र, मूल्य राजसस्करण २०,
प्रकाशक—श्री अमर जैन आगल शोध सस्थान
गढसिवाना, जिला बाडमेर (राजस्थान)

९ अनुभव रत्न कणिका
(गुजराती, चिन्तन सूत्र) मूल्य २) रु०
सन्मति साहित्य प्रकाशन व स्थानकवासी जैन संघ
उपाश्रयलेन घाटकोपर बम्बई—८४

१० चिन्तन की चांदनी (गुजराती भाषा मे)
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भडार, गाधी मार्ग (अहमदावाद)

११ फूल और पराग (कहानियां) मूल्य १)५०

१२ खिलती कलियां : मुस्कराते फूल
(लघु रुपक) मूल्य ३)५० रु०

१३ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन
(शोध प्रवन्ध) मूल्य १०) रु०

१४ बोलते चित्र
(शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहानिया) मूल्य १)५०

१५ बुद्धि के चमत्कार मूल्य १)५० रु०

१६ प्रतिध्वनि (विचारोत्तेजक रूपक) मूल्य ३)५० रु०

१७ महकते फूल (लघु कथायें) मूल्य २)०० रु०

श्री तारक गुरु—जैन ग्रंथालय, पद्राड़ा